INDEX

Name Madhu Sharma. Sub. D.S.P.

Std. Div. Roll No.

Class - ?

S. No.	Topic Unit - ?	Page No.	Date	Grade/ Marks	Signature
1.	कला	1 - 4.	29/7/24		
2.	षडांग	5 - 9.	3/8/24		
3.	रेखा	10 - 16	11/8/24		
4.	रूप	17 - 23	27/8/24		
5.	रंग	24 - 32	30/8/24		
6.	वर्ण (रंग) परिवर्तन	33 - 35	4/9/24		
7.	तान	36 - 39	10/9/24		
8.	पोत	40 - 46	17/9/24		
9.	अन्तराल.	47 -	20/9/24		
10					

S. No.	Topic	Page No.	Date	Grade/ Marks	Signature
	Syllabus				
	Unit - I st -				
1.	कला का अर्थ, परिभाषा और वर्गीकरण				
2.	कला क्या है ?				
	Unit - II nd -				
1.	कला के छः अंग (षडांग)				
2.	(रूपभेद, प्रमाण, भाव, लावण्य (योजना) सादृश्य, रंग योजना)				
	Unit - III rd				
1.	कला के छः तत्व (रेखा, रूप, रंग, तान, पोत, अन्तराल)				
2.					
	Unit - IV th.				
1.	सृजनात्मक प्रक्रिया (निरक्षण करना, कल्पना, सृजनात्मक प्रक्रिया)				

Unit - ?

1/7/24 Topic - 1 कला

कला क्या है?

कला समाज का दर्पण है आदिकाल से लेकर आज तक कांच की खिड़कियों मे रहने वाले मानव समाज में कला का लगातार विकास होता रहा है, यदा-कदा विकास क्रम मे कभी तेजी रही और कभी धीमी गति से विकास हुआ है किन्तु यह कहना निरर्थक होगा कि कला का विकास क्रम रूक गया हो, विभिन्न राजाओं के समय पत्थर के टुकड़ो को जोड़-जोड़कर, पहाड़ियों को काटकर नयना-भिराम (सुंदर) मन्दिरो एवं मूर्तियों का निर्माण हुआ। इसी प्रकार चित्रकला मे भी आदी मानुष ने गुफाओं मे टोना-टोटका की परम्परा के चलते हुए चित्रो का निर्माण शुरू किया जो भित्तिचित्र कहलाए जिसका श्रेष्ठतम विकास अंजता के चित्रो मे देखने को मिलता है,

देशकाल की परिस्थितियों के अनुसार चित्रकला में अनेक बदलाव आए जैसे - पालवंश ने एवं जैन धर्म के लोगो ने लघुचित्रो का विकास किया, जो ताड़पत्रों पर बनाए गए धीरे 2 इसका विकास क्रम बढ़ता गया, मुगल शैली मे लघुचित्र श्रेष्ठतम बनाए गए - समय उपरान्त यूरोपियन कला का भारतीय कला पर प्रभाव पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप बंगाल स्कूल का जन्म हुआ और तैलचित्रण ग्राफिक पेंटिंग, अक्षरचित्रण का विकास हुआ अर्थात् अनवरत रूप से कला का विकास क्रम चलता रहा।

कला कोई अनुकृति तो है नही जो एक दूसरे की नकल की जा सके अर्थात्

फोटोकॉपी भी नहीं की जा सकती, बल्कि यह एक सृजनात्मक कला है जिसमें कलाकार या चित्रकार अपने स्वविवेक से विभिन्न तत्वों को विषय के अनुसार तारतम्य कर सके अर्थात संयोजन कर सके क्योंकि विषय का होना परम आवश्यक है, क्योंकि कलाकार का उद्देश्य अपनी कला को उस विषय के प्रति अपना संदेश सामान्य जन मानस्तक दे सके।

* ललित कला में पाँच प्रकार की कला आती है-

1. चित्रकला
2. मूर्तिकला
3. संगीतकला
4. काव्यकला / साहित्य कला
5. नाटक कला

उपरोक्त प्रथम दो कलाएँ (चित्रकला, मूर्तिकला) चाक्षुष कला है जबकि शेष तीन कलाएँ (संगीतकला, काव्यकला, नाटक कला) श्रव्य कला की श्रेणी में आती है, अर्थात चित्रकला एवं मूर्तिकला को हम केवल आँखों से देख सकते हैं; इसलिए इसे चाक्षुष कला कहा गया, जबकि अन्य तीन कलाएँ बिना आँखों के भी इनका रसास्वादन लिया जा सकता है।

ललित कलाएँ रूपप्रद कलाएँ कहलाती है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है, अपने मूल पदार्थ का अस्तित्व छोड़कर एक नवीन रूप या आकार में परिवर्तित होना, जैसे- मूर्तिकार के सामने पत्थर या मिट्टी के टुकड़े हो तो वह मूर्ति में

परिवर्तित कर देगा, तो हम उसे पत्थर या मिट्टी ना कहकर मूर्ति कहेंगे।
अतः मूर्ति अपना अस्तित्व छोड़कर मूर्ति में परिवर्तित हो गया, ठीक इसी तरह चित्रकला में चित्रकार कला के तत्वों को अपने विषय के अनुसार कम या ज्यादा करके चित्रों का निर्माण करता है तो वहाँ पर रेखा या रंग न बोलकर चित्र बोलेंगे, इसी प्रकार संगीत में शब्द न बोलकर या वाद्य यंत्र का नाम लिए बगैर ही हम संगीत का आनन्द लेते है। साहित्य/काव्यकला में श्रेष्ठ शब्दों का चयन किया जाता है, साथ ही नाटक कला में अपने विषय के अनुरूप कहानी का चयन किया जाता है।
जैसे - अभिमन्यु के नाटक में महाभारत का पात्र होना आवश्यक है।

* चित्रकला में निम्न कला के तत्वों को संजोया जाता है, जिनमें से निम्न तत्व है -

1. रेखा
2. रूप
3. रंग
4. तान
5. पोत
6. अन्तराल

उपरोक्त तत्वों को कलाकार अपने विषय और उद्देश्यों के अनुसार इन तत्वों का प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र है। इनका मूल लक्ष्य विषय की पूर्ति करना होता है, जिसके लिए किसी भी तत्व को कम या बढ़ाया जा सकता है, जैसे

परिवर्तित कर देगा, तो हम उसे पत्थर या मिट्टी ना कहकर मूर्ति कहेंगे।
अतः मूर्ति अपना अस्तित्व छोड़कर मूर्ति में परिवर्तित हो गया, ठीक उसी तरह चित्रकला में चित्रकार कला के तत्वों को अपने विषय के अनुसार कम या ज्यादा करके चित्रों का निर्माण करता है, तो वहाँ पर रेखा या रंग न बोलकर चित्र बोलेंगे, उसी प्रकार संगीत में शब्द न बोलकर या वाद्य यँत्र का नाम लिए बगैर ही हम संगीत का आनन्द लेते हैं। साहित्य / काव्यकला में श्रेष्ठ शब्दों का चयन किया जाता है साथ ही नाटक कला में अपने विषय के अनुरूप कहानी का चयन किया जाता है।
जैसे - अभिमन्यु के नाटक में महाभारत का पात्र होना आवश्यक है।

* चित्रकला में निम्न कला के तत्वों को सँजोया जाता है, जिनमें से निम्न तत्व है-

1. रेखा
2. रूप
3. रंग
4. तान
5. पोत
6. अन्तराल

उपरोक्त तत्वों को कलाकार अपने विषय और उद्देश्यों के अनुसार इन तत्वों का प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र है। इनका मूल लक्ष्य विषय की पूर्ति करना होता है जिसके लिए किसी भी तत्व को कम या बढ़ाया जा सकता है, जैसे

लैण्ड स्केप पेंटिंग में रेखा का प्रयोग बहुत कम होगा जबकि अन्तराल का प्रयोग सर्वाधिक होगा। उसी प्रकार रंग का प्रयोग अधिक होगा और पोत का प्रयोग कम होगा।

निष्कर्ष :-
सारांश यह है कि कलाकार अपने विषय एवं उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किसी भी तत्व को कम या बढ़ायेगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है, क्योंकि कला सौन्दर्यानुभूति के लिए होती है। इसलिए वह समय, उद्देश्य एवं लक्ष्य की पूर्ति हेतु अपने स्वयं विवेक से किसी भी तत्व को कम या ज्यादा कर सकता है।

1/184

Topic - 2 [षडंग]

★ षडंग किसे कहते है ? ★

'वात्सायन' द्वारा लिखित 'कामसूत्र' नामक पुस्तक के तीसरे अध्याय में 64 प्रकार की कलाओं का वर्णन किया गया है जिसमें चतुर्थ अध्याय मे आलेख्य अर्थात् चित्रकला का ही वर्णन किया गया है, इसमें कला के छः अंगो का वर्णन किया गया है।
इस पुस्तक की रचना दूसरी या तीसरी सदी में की गई।
जिसका हिन्दी में अनुवाद जयपुर घराने के पं० यशोधर ने 11 वीं सदी मे किया।
परिणामस्वरूप 'जयमंगला' नामक पुस्तक मे षडंग का वर्णन किया गया है।

रूप भेदः प्रमाणानी भावः लावण्य योजनम्।
सादृश्य वर्णिका भंगः इति चित्र षडकम् ।।

उपरोक्त श्लोक के अनुसार छः प्रकार के अंगों का वर्णन इस प्रकार है -

रूप भेद
प्रमाण - प्रमा - नाप (ल० x चौ० x ऊँ)
भाव
लावण्य योजना - सौन्दर्य
सादृश्य
वर्णिका भंग - रंग योजना।

पं० यशोधर ने अपनी जयमंगला पुस्तक मे षडंग कला के (छः अंगो) षडंग का अनुवाद इस प्रकार किया है -

1. **रूप भेद** : मूल रूप से भेद खाना अर्थात जो मूल आकार है, उसे हम हिन्दी में रूप कहते हैं।

- चित्रकार सामने देखे हुए रूप को चित्रांकित करता है कि दर्शक यह देखकर पहचान सके कि यह अमुक व्यक्ति के आकार का चित्र है।
- उदाहरण के तौर पर एक साधु के हाथ में कटोरा है और भिक्षा भी माँग रहा है लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि वह भिखारी ही हो क्योंकि भिक्षा तो बुद्ध ने भी मांगी थी एवं गुरुकुल में पढ़ने वाले विद्यार्थी भी मांगते हैं। इन सबका उद्देश्य अलग-अलग है अर्थात गौतम बुद्ध अथवा अन्य कोई महापुरुष का चित्र बनाया गया हो तो यह समझ में आ जाना चाहिए कि यह गौतम बुद्ध का चित्र है, ना कि किसी भिखारी का।

2. **प्रमाण** : प्रमाण का अर्थ होता है प्रमा (नाप) जिसका हिन्दी में अनुवाद होता है नाप-तोल अर्थात चित्रकला के क्षेत्र में लं.×चौ.×ऊं. की माप को हमारे चित्रपट पर कौनसी वस्तु, कितनी बड़ी और कितनी छोटी बनाई जायेगी इसी बात को गणितीय नियमों से समझाया गया है।

जैसे- छोटा शिशु दो या तीन ताल, कुमार आठ ताल, महिला नौ ताल, राजा एवं पुरुष दस ताल, राक्षस बारह ताल बनाने का सुझाव दिया गया है, किन्तु प्राकृतिक दृश्यों में परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए पहाड़ छोटी आकृति में बनेगा जबकि घर बड़ा बनेगा।

उसी चित्र मे वृक्ष, पहाड़ और घर से भी बड़ा बन जाएगा, ठीक इसी प्रकार मूर्तिकला मे ल० x चौ० x गहराई की निकालनी पड़ती है और उपरोक्त नियमानुसार मानव आकृतियों का निर्माण करना होगा।

भाव :- कलाकार अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए चित्र बनाता है, लेकिन जिस व्यक्ति का चित्र बनाया जा रहा है, उसका अपना कोई निजी उद्देश्य नहीं होता है। इसलिए कलाकार अपने उद्देश्यों को पूर्ण करने हेतू, उन्हीं मानवाकृतियों का चयन करता है जो उनके चित्र मे है, और जो भाव दर्शा सके। जैसे - किसी भिखारी का चित्र बनाते समय भिखारी को गंजा होना या हाथ में कटोरा माँगकर भिख माँगते हुए चित्रित करना पर्याप्त नही है, बल्कि भिखारी के शरीर की सँरचना (दुबला - पतला) एवं उसके चेहरे के भाव एव भिख माँगने के तरीके मे भी भिखारी होने का भाव दिखना आवश्यक है अन्यथा वह चित्र गौतम बुद्ध का भी हो सकता है और कोई अन्य महापुरूष का भी हो सकता है। अतः महात्मा गाँधी ने भी भीक्षा मांगी थी, इससे वह भिखारी तो नहीं हो सकता है।

लावण्य योजना :- लावण्य सँस्कृत भाषा का शब्द है जिसका हिन्दी मे अनुवाद सौन्दर्य होता है अर्थात किसी भी घराने मे अपने विषय के प्रति जो कलाकृति प्रस्तुत की जाती है, वह नीरस ना लगे और

दर्शक या श्रोता उस कला के प्रति हीन भावनाकला न हो जाए अन्यथा हमारी चित्रकला प्रस्तुत करने का उद्देश्य ही खत्म हो जाएगा इसलिए प्रत्येक कला में प्रस्तुती सौन्दर्य अथवा लावण्यता या गीत में प्रस्तुती होना आवश्यक है, जैसे फिल्मों में गाने होते हैं साहित्य में छन्द - अलंकार होते हैं उसी प्रकार चित्रकला में सौन्दर्यात्मक आलेखों का होना आवश्यक है।

अधिकांशतः नारी को सौन्दर्य का पर्याय माना गया है, इसलिए अधिकांश चित्रकारों ने अपने चित्रों में नारी को सर्वोत्तम स्थान दिया है, जैसे - 'बनी - ठनी'

किन्तु यह भी ध्यान रखा जाए कि नारी सौन्दर्य बनाते बनाते प्राकृतिक सौन्दर्य को ना भूलें, साथ ही उस विषय के प्रति भी सजग रहें, जिस विषय पर हम चित्र बना रहे हैं।

सौन्दर्य की अपनी एक सीमा होती है, इसलिए अधिक सौन्दर्य भी नहीं होना चाहिए अन्यथा वास्तविक सौन्दर्य समाप्त हो जाएगा, जैसे - एक नारी को सम्पूर्ण गहनों से ढक दिया जाए, तो सिर्फ गहने देखकर ही रह जाएगा, इसलिए अतिआवश्यक वस्त्र एवं अल्प गहने ही पहनाए जाए दूसरे शब्दों में हम यह कहें कि एक कमरे में सम्पूर्ण दिवार पर पेंटिंग ही पेंटिंग बना दी जाए तो वह भी अच्छा नहीं होगा इसलिए यथास्थान पर पेंटिंग अथवा अलंकरण बनना चाहिए।

सादृश्य : चित्रकार को अपना चित्र निर्माण करते समय अपने विषय के अनुसार वस्तुओं का चित्रण करना होता है उन चित्रणों मे यह बात ध्यान रखने की आवश्यकता है कि पुस्तक चित्रण करते समय पुस्तक ही लगे ना कि मिठाई का डिब्बा, ठीक उसी प्रकार सांप का चित्रण करते समय सांप ही लगना चाहिए ना कि वेणी के तार के समान लगे अर्थात् साधु का चित्रण करते समय भिखारी का न करे साधु जैसा आचरण करने वाला अच्छ पुष्ट रहने वाले शरीर युक्त चेहरे पर तेज लिए हुए चित्रण करना चाहिए, कभी-कभी तो चित्रकारों ने महापुरुषों के चेहरे के पीछे आभामण्डल बनाया ताकि इससे महानता का ज्ञान हो सके।

वर्णिका भंग : वर्णिका भंग: संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका हिन्दी मे अनुवाद रंग योजना है, 'वात्सायन' द्वारा रचित 'कामसूत्र' मे भी रंग के बारे में निम्न व्याख्या की है -

"वर्ण ज्ञानम् ना अस्ति किम तस्य जप पूजने"

अर्थात् जिस कलाकार को वर्ण का ज्ञान नही है, तो उसका समस्त शेष ज्ञान अधूरा है, इसलिए कलाकार को वर्ण का ज्ञान होना अतिआवश्यक है, जैसे - प्राथमिक रंग लाल, नीला, पीला होता है, इसी प्रकार द्वितीयक रंग हरा, बैंगनी, नारंगी होता है। इसी प्रकार विरोधी रंग एकाकी रंग योजना समीपवर्ती रंग योजना का समग्र ज्ञान होना आवश्यक है, अन्यथा हमारी कला अधूरी होगी।

* **रेखा :** साधारणतया दो या दो से अधिक बिन्दुओं के मध्य की दूरी को रेखा कहते हैं, किन्तु चित्रकला में रेखा का प्रतिकात्मक महत्व है इसलिए चित्रकला में सभी प्रकार की रेखाओं का प्रयोग होता है। आधुनिक ज्यामितीय में रेखा से सरल रेखा का अर्थ ग्रहण किया जाता है किन्तु कला के संदर्भ में अनेक प्रकार की रेखा अपना अस्तित्व रखती है कहीं 2 पर दो से अधिक बिन्दुओं के मध्य रेखा नहीं खींची जाती है फिर भी रूप का आभास होता है जिसे अनुभूत रेखा कहते है।

⇒ रेखा के प्रकार -

1. **औपचारिक रेखा (फॅार्मल लाइन) :** औपचारिक रेखाएँ वे कहलाती है जो सीधी, सरल होती हैं जिनका निर्माण किसी यंत्र द्वारा जैसे - स्केल, प्रकार इत्यादि यंत्रों की सहायता से आयत, वर्ग वृत्त, त्रिभुज षट्कोण, अष्टकोण इत्यादि रेखाएँ औपचारिक रेखा कहलाती है ये रेखाएँ अधिकांश: इंजीनियरिंग के विद्यार्थियों के काम आती हैं।

2. **अनौपचारिक रेखा :** हाथ से खींची गई अथवा लिपी संबंधी रेखा अनौपचारिक रेखा

इस प्रकार की रेखाएँ कोमल, शक्तिशाली, पुष्ट, गतिपूर्ण, लहरदार, बारिक, मोटी, तीखी आदि अनेक प्रकार की रेखाएं हो सकती है जिसमे प्रवाह होता है। उदाहरण के रूप मे हम अंजता के चित्रों को कह सकते है या हमारी नोटबुक भी हो सकती है।

रेखा की दिशा :- चित्र संख्या 'ख' मे खेंची गई लाइन के दोनो सिरो पर खड़ी लाइन बनाई गई जो उस रेखा की निश्चित सीमाएँ तय हो चुकी है, किन्तु चित्र संख्या 'ग' की रेखा 'ख' के बराबर ही है लेकिन तीर के निशान लगने से दांयी ओर जाती हुई प्रतीत होती है जबकि चित्र संख्या 'घ' भी उतनी ही लम्बी रेखा है लेकिन वह बांयी ओर जाती हुई प्रतीत होती है, इसी प्रकार चित्र संख्या 'ङ' भी 'ख' के बराबर ही है लेकिन देखने में सबसे लम्बी लगेगी और दोनो तरफ भागती हुई प्रतीत हो रही है जबकि चित्र संख्या 'ग' में मात्र दो बिन्दु है जो एक-दूसरे बिन्दु पर परस्पर रेखा की अनुभूति करवाती है, जबकि वहाँ पर रेखा नहीं है।

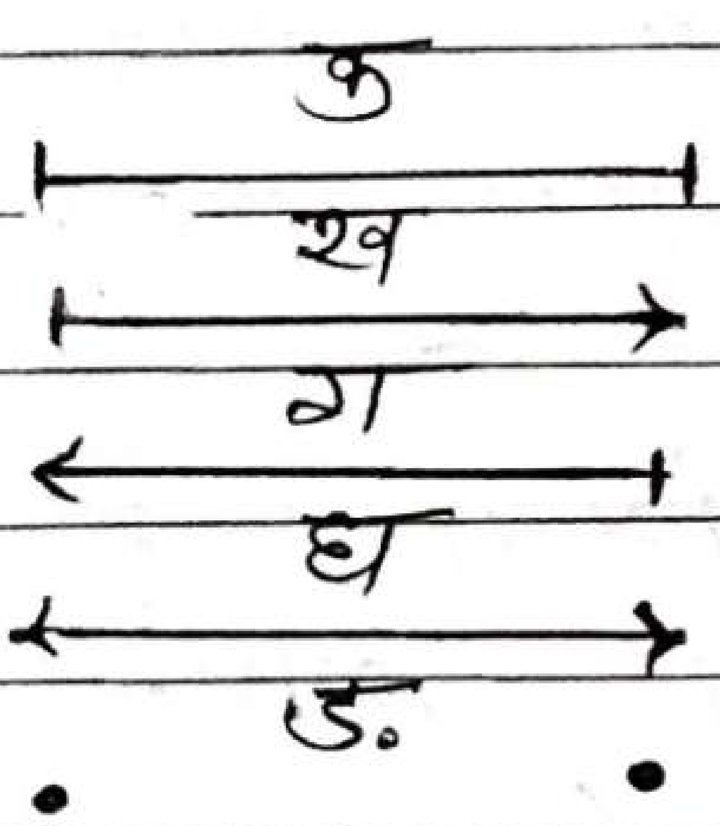

* **रेखा के प्रभाव :** रेखा के अपने निजी प्रभाव होते हैं जिसका अध्ययन एक कलाकार को करना आवश्यक है, वे प्रभाव इस प्रकार से है।

1. **लम्बवत रेखा / सीधी खड़ी रेखा :** इस प्रकार की रेखाओं में एक गौरव या स्वाभिमान का प्रतीक होता है जैसे- एक बहुमंजिला इमारत सीधी खड़ी रहती है इसलिए उसको देखकर गर्व महसूस होता है ठीक इसी प्रकार देश का ध्वज हमेशा खड़ा रहता है जो स्वतंत्रता, मन की उच्चता, स्थीरता, सासवंदता, आभिजात्य का प्रतीक माना जाता है।

2. **सीधी पड़ी रेखा :** यह रेखा क्षितिज रेखा के सम्पर्क में रहती है इस रेखा का प्रभाव आराम, संतुलन, स्थिरता, मौन निष्क्रियता, विश्राम, शांति, मित्रता एवं स्थायित्व का प्रभाव दर्शाती है जैसे इंसान जब सो जाता है तो मौन व्रत एक ही जगह पर स्थिर रहता है मानसिक शांति मिलती है, सहयोग विश्राम मिलता है।

3. **कर्णवृत्त रेखा :** कर्णवृत्त रेखा तिरछी रेखा होती है इसमें मानव

शरीर शीतलता से जागृत होकर क्रियान्वित हो जाता है जैसे- दौड़ने की स्थिति, खेलने - कूदने, नृत्य, झूलनों के बल चलना, नाचना इत्यादि क्रियाकलाप शामिल है, इससे उत्तेजना, व्याकुलता, बेचैनी नाटकीय, प्रभाव एवं असुरक्षित की भाव का प्रभाव दिखाई देता है।

4. कोणीय रेखा :

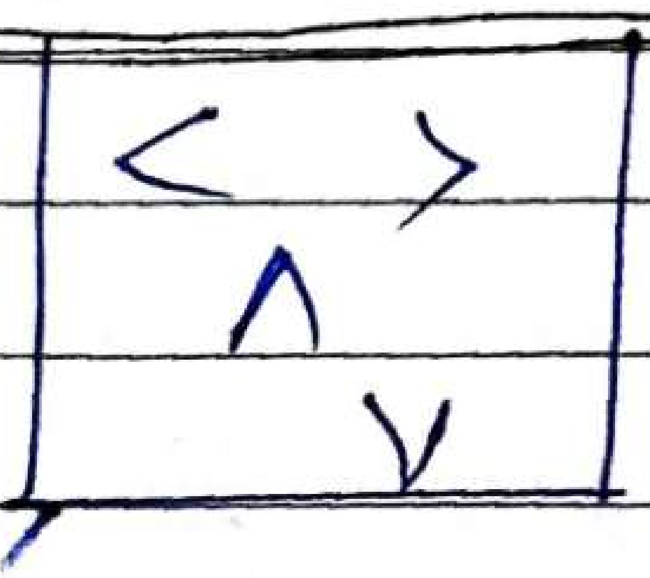

चित्रकला में शीघ्रता से दिशा परिवर्तित करने की क्षमता रखता है उसे कोणीय रेखा कहते है इसमें दुर्घटना, असुरक्षा, अस्पष्टता, संघर्ष, व्याकुलता, क्षणिकता, आघात आदि प्रभाव होते हैं।

5. एक पुंजीय रेखा -

इस प्रकार की रेखाओं में संचार, अभिलाषा आदि के प्रभाव परिलक्षित होते हैं जैसे - सूर्य एक ही जगह से सभी दिशाओं में अपनी किरणें फेंकता है अथवा एक ही मोबाईल टावर से सभी दिशाओं के मोबाईल चल जाते है उसे ही प्रसार या संचार के भाव परिलक्षित होते हैं।

6. चक्राकार रेखा - इस प्रकार की रेखाओं मे गति, उत्तेजना, वृद्धि, निरन्तरता, शक्ति एवं पूर्णता के प्रभाव रेखाएँ है।

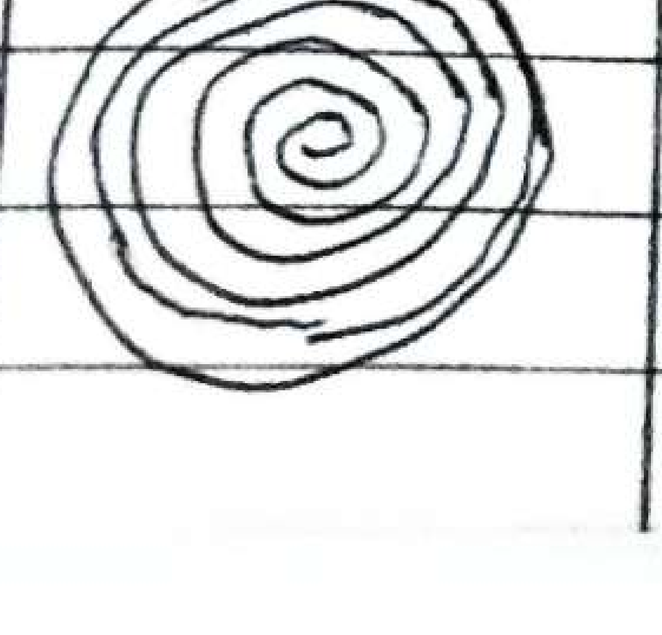

जैसे नृत्य करते समय बिल्कुल गोल घुमाते है तो उत्तेजना के भाव होते है तथा गति के भाव दिखाई पड़ते है, साथ ही इस प्रकार की रेखाओं को देखने से गति का एहसास होता है।

7. प्रवाही रेखा :-

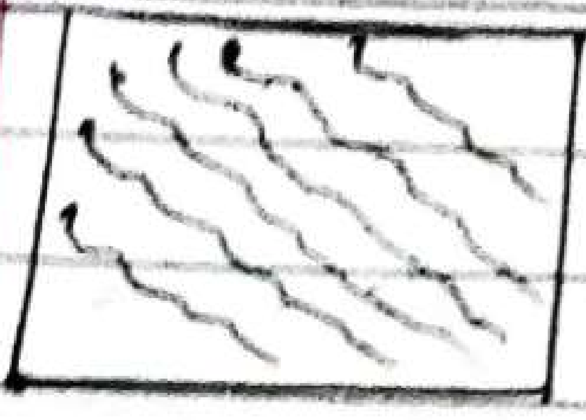

इस प्रकार की रेखाओं में लयात्मक रेखा काम में ली जाती है जिससे गति माधुर्य लावण्य आदि मानकर कर सकते है जिसमें मंद- मंद गति का अहसास होता है जैसे - नदी के प्रवाह में माधुर्य सौन्दर्य एवं गति दिखाई पड़ती है।

A रेखांकन के प्रकार :-

1. स्वतंत्र रेखांकन :- वस्तु को देखने के पश्चात मस्तिष्क पर पड़ने वाली रेखाओं से उत्पन्न रेखांकन को शामिल किया गया है जो प्रत्येक कलाकार से भिन्न होता है।

2. स्मृति रेखांकन :- इस प्रकार की रेखा में पूर्व में देखते हुए वस्तु या आकृति को स्मृति के आधार पर चित्रण करना इसमें कभी- कभी स्वप्न में देखी गई आकृति का चित्रण करना भी स्मृति रेखांकन कहलाता है।

3. प्रतिरूपात्मक रेखांकन :- इस प्रकार की रेखा में जो वस्तु जिस प्रकार की दिख रही है उसी प्रकार यथावत चित्र करना जैसे - सड़क को बनाते वक्त दूर जाकर सकड़ी हो जाना। प्रतिरूपात्मक की श्रेणी में आता है इसमें छाय वृद्धि के नियम लागू करना आवश्यक है।

4. प्रवाही रेखांकन :- जिस रेखा में गतिशीलता हो वह प्रवाही रेखा होती है जैसे नदी में गति होती है पानी बहता है उसे प्रवाही रेखा कहते हैं।

5. यांत्रिक रेखा :- इस प्रकार की रेखाओं में यंत्र की सहायता से चित्रण करना जैसे - स्केल तथा अन्य यंत्रों का प्रयोग करके यांत्रिक होती है।

6. सीमांत रेखाएँ :- जिन रेखाओं में या आकारों में सीमा का अन्त ना हो वे सीमा रेखा के अन्तर्गत आते हैं अर्थात रेखाएँ न के बराबर होती है अर्थात छाया प्रकाश के द्वारा ही रूप बनाया जाता है वह सीमांत रेखांकन की श्रेणी में आता है।

7. सांकेतिक रेखांकन :- इस प्रकार के रेखांकन में कलाकार केवल दो से चार मिनट में सक्रिय एवं सहायक अंतराल

को

विभाजन करते हुए किसी भी आकार का स्केच तैयार करते है। वह सांकेतिक रेखांकन की श्रेणी मे आता है।

__प्राकृतिक रेखांकन__ : प्रकृति जनित फूल-पत्ति इत्यादि का चित्रण करना इस श्रेणी में आता है, फूल-पत्तियो को सुखाकर भी चित्रण किया जा सकता है।

__वस्तु चित्रांकन__ : इस प्रकार की रेखाओं मे सामने रखे वस्तु समुह को जैसा दिख रहा है वैसा ही चित्रण करना होता है, जैसे - पुस्तक, प्लेट, गिलास इत्यादि।

27/8/24

★ रूप ★

रूप
Form : F : first
O : orgnic
R : Revelition of
M : Matter

रूप की परिभाषा एवं रूप के प्रकार एवं प्रभाव क्या है ?

रूप : किसी भी द्वि - आयामी चित्रपट पर किसी भी आकार की लम्बाई एवं चौड़ाई को द्विआयामी रेखांकन करके रंगो द्वारा त्रि - आयामी आकार का प्रत्यक्षीकरण कराता है।
रूप को अंग्रेजी मे form कहते हैं जिसका पूरा नाम - first orgnic revelition of matter होता है जिसका हिन्दी मे अनुवाद " पहली बार किसी का प्रत्यक्षीकरण होना हैं " ।

चित्रकार अपने विषय के अनुरूप कुछ रूप आकारो को अपनी चित्रकला मे शामिल करता हैं जिनमे से बहुत सारे आकार ऐसे होते है जो सौन्दर्य के प्रतीक बने हुए है या सक्रिय रूप की भूमिका अदा करते है । शेष आकार विषय के अनुसार सहायक रूप के रूप मे चित्रांकन करता है जैसे - प्रकृति चित्रण मे

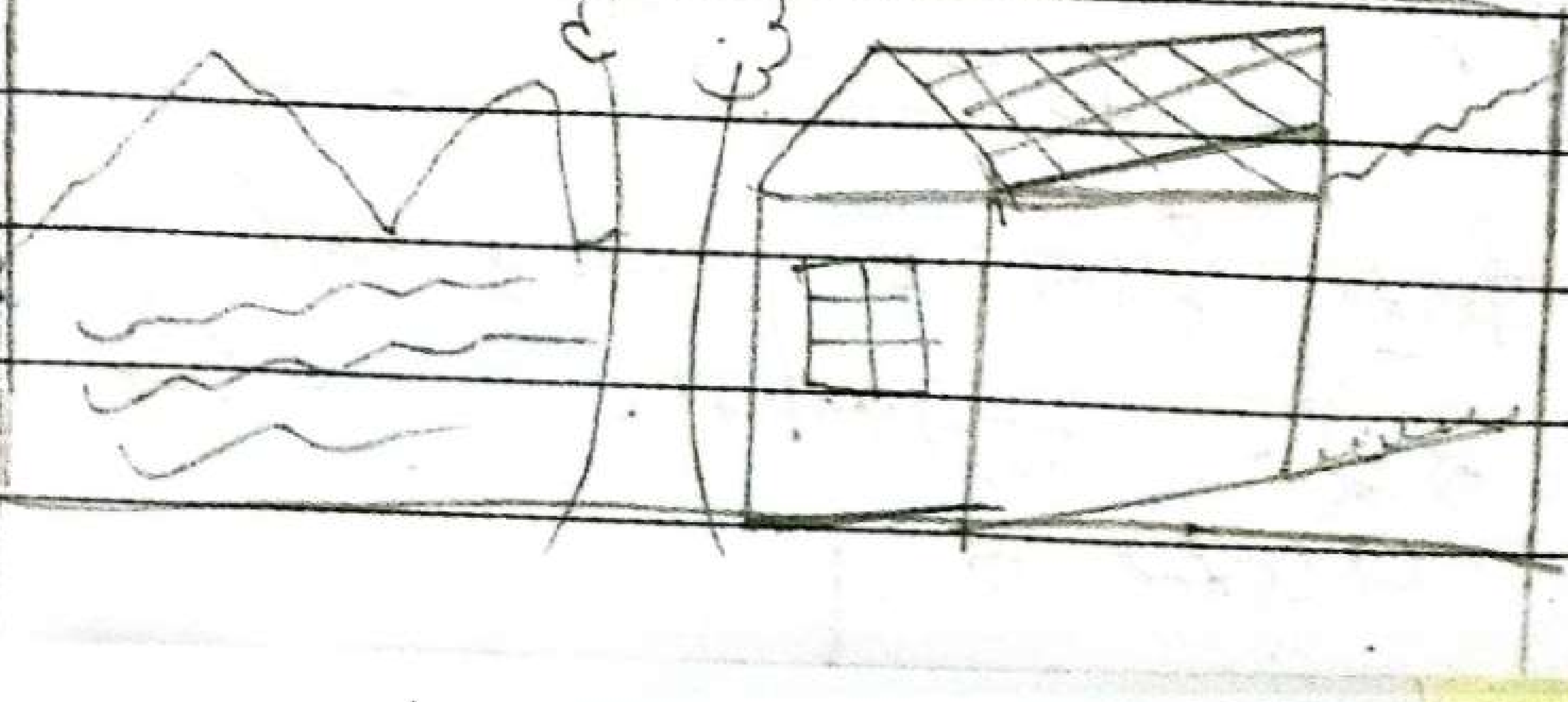

रूप दो प्रकार के होते है :

<u>नियमित</u> : नियमित रूप वे होते है जो आकार के मध्य से सीधी लम्बवत रेखा खींचने पर जैसा उधर वैसा इधर की परम्परा को निभाते हुए बनाया जाता है, यह आकार साधारण कोटी के होते है किन्तु सरलता से बनाये जा सकते है कुछ विद्वान इसे सम्मित रूप के नाम से भी बोलते है।

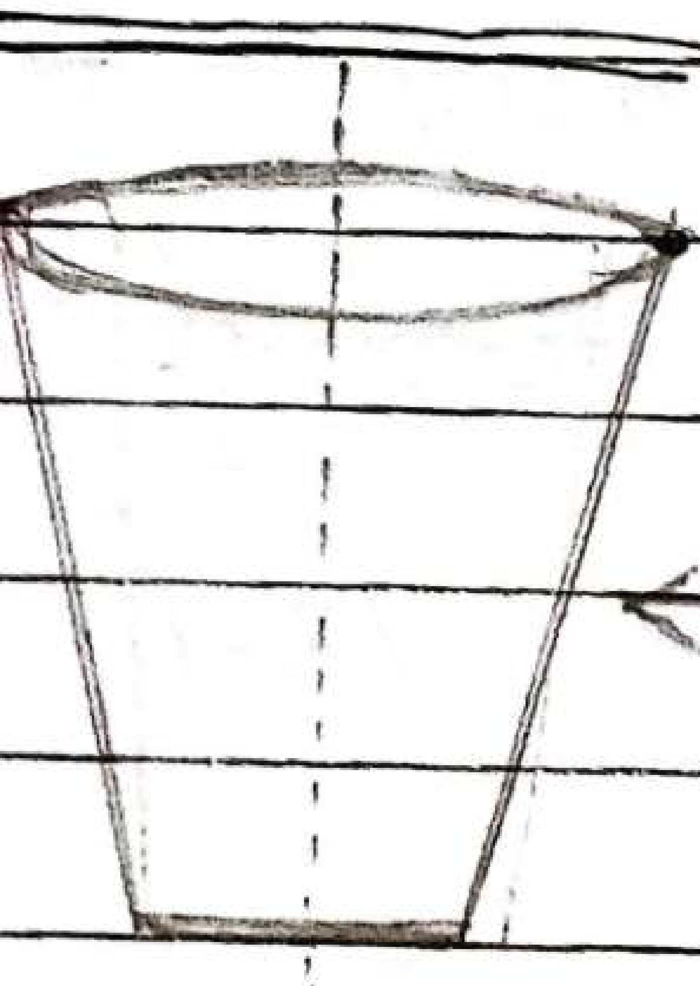

<u>अनियमित</u> : अनियमित रूप वे होते है जिसके मध्य मे लम्बवत रेखा खींचने के पश्चात जैसा इधर वैसा उधर की परम्परा नही होती है जैसे - चाय की केटली जग, मग, चाय का प्याला, कप आदि के आकार बनाने मे थोड़े कठिन होते है परन्तु रुचिकर होते है। कुछ विद्वान इसे असम्मित रूप के नाम से भी बोलते है।

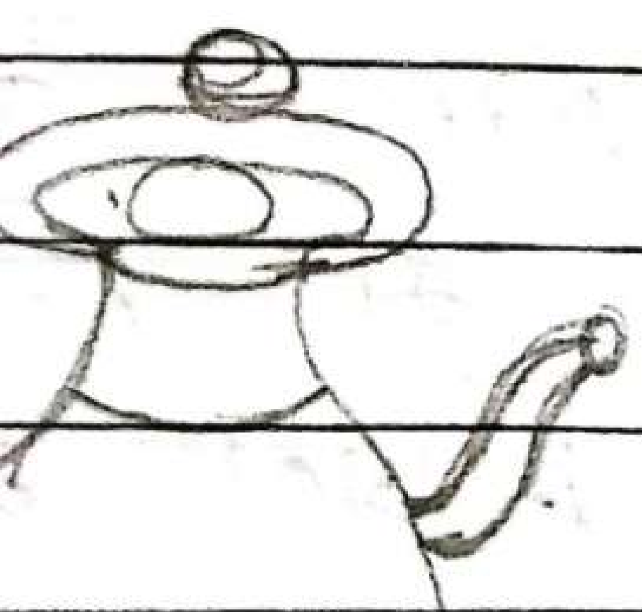

★ **रूप के प्रभाव :** हर रूप या आकार का अपना प्रभाव होता है जिसके द्वारा चित्र में आवश्यकता के अनुसार प्रभाव डाला जा सकता है . अर्थात् जिस प्रकार के प्रभाव की आवश्यकता हो उसी प्रकार के रूप का निर्माण किया जा सकता है इसलिए चित्रकार को विभिन्न रूप, आकारों के प्रभाव का ज्ञान होना आवश्यक है।

(1) **आयताकार :**

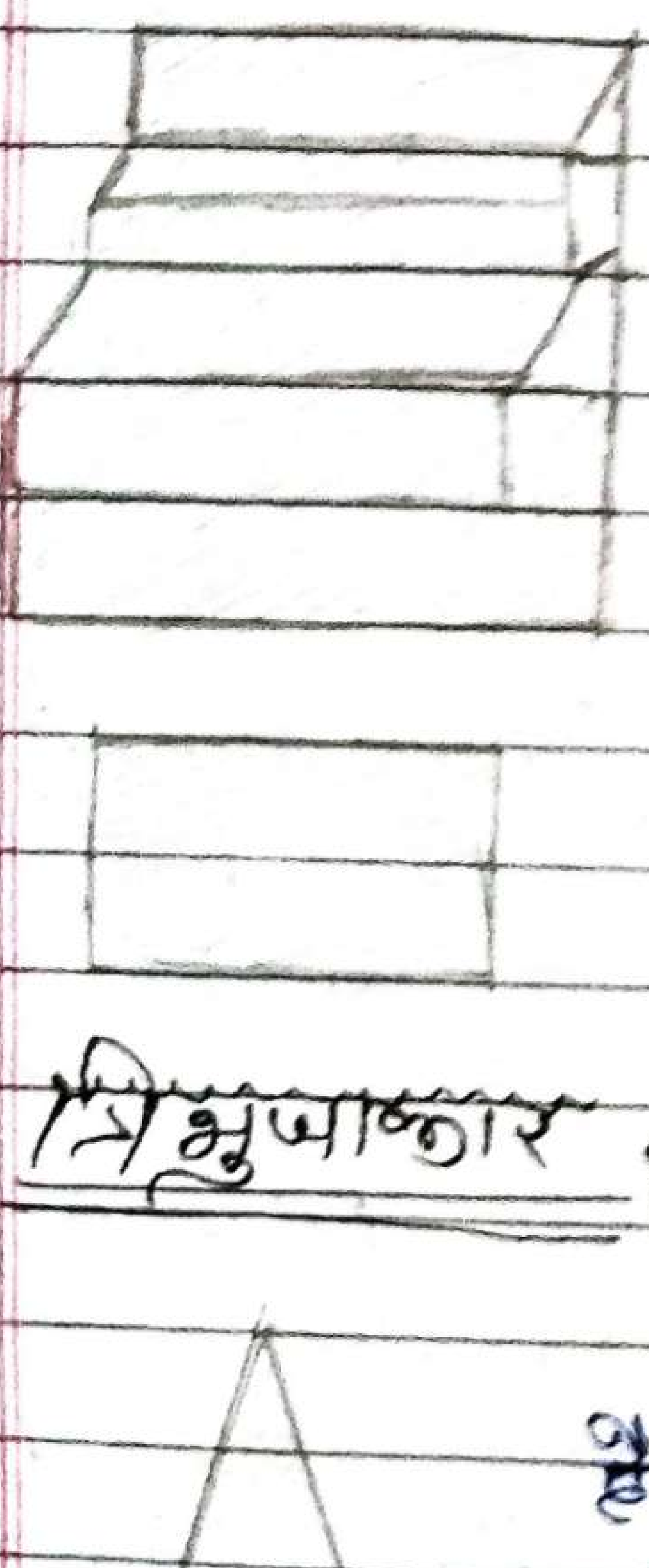

आयताकार रूप के द्वारा चित्रकार स्थायित्व, स्थिर, गतिहीन, ठोस, निश्चल, अचल आदि प्रभावों को दर्शाने हेतु आयताकार आकृति का चित्रण करना होता है।

(2) **त्रिभुजाकार :** वह आकार जिसमें तीन भुजाएँ होती है किन्तु नीचे वाली भुजा 180° पर होती है तथा लम्बवत रेखा खींचने पर यह दोनों तरफ समान आकृति होती है। उस आकार के प्रभाव लावण्य, सौन्दर्य, सुरक्षा, स्थिर के प्रभाव देखने को मिलते है।

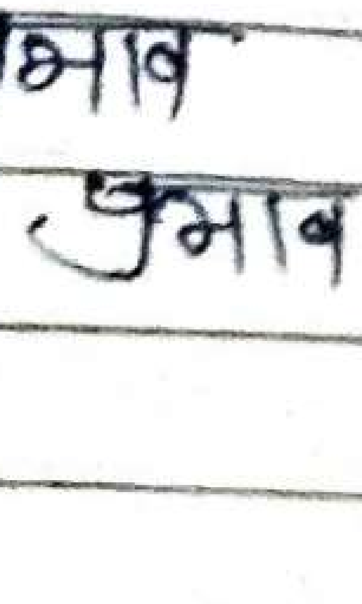

Date- 28/8/24

(3) विलोम त्रिभुजाकार :

विलोम त्रिभुजाकार से असुरक्षा, अशांति, अनिश्चित, भिन्नता, शीघ्र परिवर्तनशील, अनिश्चय के प्रभाव प्रदर्शित होते हैं।

(4) वक्राकार : इसे अंडाकार भी कहते हैं ऐसे रूपाकारों में झुकाव तथा वक्रता होती है इस आकृति में वृत्ताकार, अंडाकार, बेलनाकार, दीर्घवृत्त है एक केन्द्रीय रूपाकारों का समावेश किया गया है। इस आकृति में सौन्दर्य, लावण्य, नित्यता, गति, विशालता, महानता, पूर्णता एवं सृजनात्मक भाव दिखाई पड़ते हैं।

(5) मुक्त आकृति : इस प्रकार के रूप को Free form कहते हैं जिसमें विभिन्न प्रकार के आकारों के स्केच बनाए जाते हैं इसमें चित्रकार के सामने कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है, साथ ही चित्रकार मानव निर्मित प्रकृति जनित सभी आकारों को स्वतन्त्रता से चित्रित करता है। चित्रकला के दृष्टिकोण से यह विधि बहुत ही महत्वपूर्ण है।

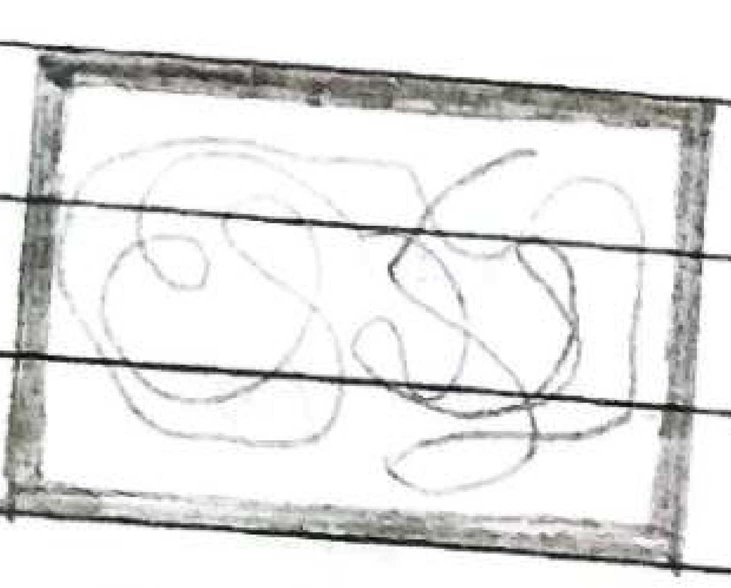

वृत्ताकार :

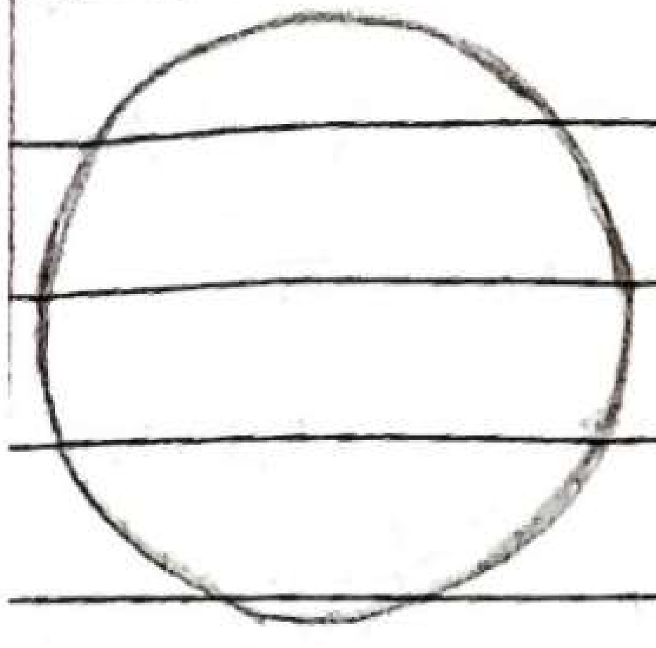

इस प्रकार के आकारों द्वारा गति सौन्दर्य एवं शाश्वतता ब्रह्माण्ड में प्रभाव दिखाई पड़ते है।

रूप का महत्व *

रचना प्रक्रिया में रूप का महत्त्व पूर्ण स्थान है। चित्रभूमि में अंकन को प्रारम्भ करते है। रूप का निर्माण होने लगता है इसलिए कह सकते है कि कला रूपाकारों के ही भाव हो और विभिन्न रूपाकारों की उपस्थिति कलारूपी चित्रात्मक भाषा को जन्म देती है। कला की यह परिभाषा विभिन्न कला रूपों में महत्वपूर्ण उपस्थिति रेखांकित करती है।

वस्तुतः रूप के अभाव में चाक्षुष कला का कोई महत्व नहीं है। अतः रूपप्रद कलाओं का अस्तित्व रूपाकारों की रचना एवं उनके विकास पर ही निर्भर करता है।

कलाकृति में किसी एक रूप की उपस्थिती ही पर्याप्त नहीं है। बल्की अनेक रूपों का समावेश होना आवश्यक है जो अन्य कला तत्वों से समाहित होकर सम्पूर्ण चित्रभूमि को एक कलाकृति का रूप देती है। अतः किसी भी कलाकृति का मूल्यांकन के लिए यह सर्वाधिक विचारणीय है अर्थात् कलाकृति के अन्य तत्वों का रूप से संबंध होना आवश्यक है।

रूप के अन्तर्गत प्रभाव व वर्ण ः

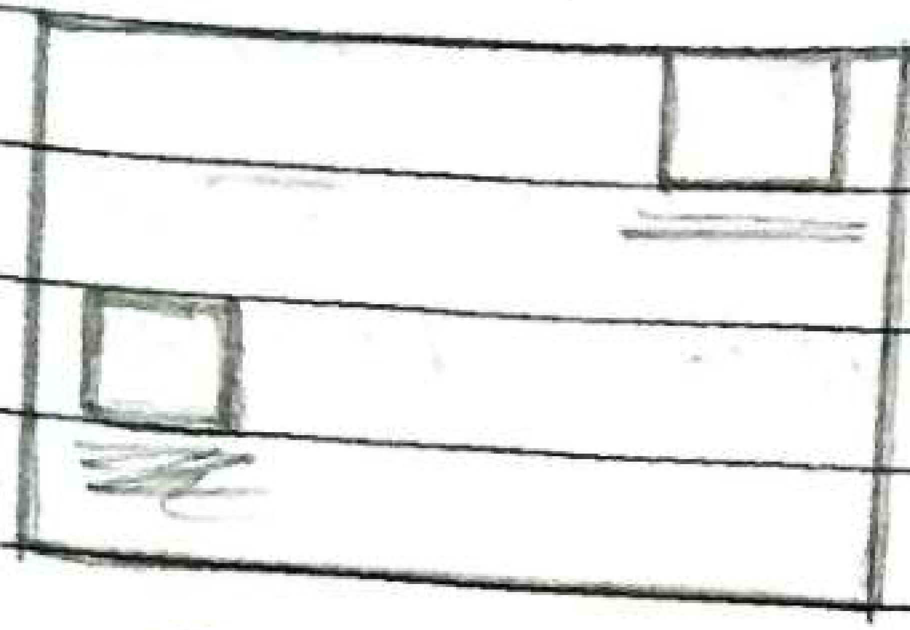

चित्र के अन्तर्गत आकारों में रचना के विषय के अनुरूप आकारों को लिया जाता है। जिससे समान रूप का भाव पैदा हो सकें। जिसके लिए चित्रकार विभिन्न शैलियों का प्रयोग करते हैं तथा प्रकृति अन्य यथार्थ रूपों के विपरीत काल्पनिक रूपों का भी स्वतंत्रता पूर्ण प्रयोग करते हैं आकृतियों के परिमाण में अंतर करके भी विविध रूपों का समावेश किया जा सकता है इसी प्रकार छाया प्रकाश प्रयोग करके एवं रंगों की तान में परिवर्तन करके भी चित्र में विविधता प्राप्त किया जा सकता है। आधुनिक कलाकार - पीत के द्वारा भी कुशल विविधता प्राप्त करना चित्रकार की कुशलता पर निर्भर करता है आधुनिक सूक्ष्म चित्रण तो पूर्णतः रूप की विविधता पर ही निर्भर है करता।

रूप व अंत

प्रत्येक कलाकार चित्र रचना के आरम्भ में ही इस समस्या का समाधान खोज लेता है कि यह चित्र कहाँ पर स्थित होगा। रूप अंतराल के महत्व को घटा या बढ़ा सकता है। इसी प्रकार अंतराल में रूप के महत्व को घटा या बढ़ा सकता है। रूप की स्थिति तथा शेष अंतराल से उसके संबंध में सबसे प्रमुख तथा पहला गुण क्षेत्र होता है।

इसलिए रूप के आकार में विभिन्नता लाना चित्रकार की योग्यता पर निर्भर करता है। जिसके माध्यम से आकार में प्रभाव में अन्तर आ जाता है। एक रूप को दूसरे रूप तक की यात्रा अंतराल के माध्यम से ही होती है।

अतः चित्रकार भिन्न - भिन्न चित्रों में नई- नई विधि संयोजित करे साथ ही रूप की अनेक संभावनाओं का

परिभाषा : वर्ण प्रकाश का एक गुण है कोई स्थूल वस्तु नहीं है। इसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है बल्कि अक्षय पटल द्वारा मस्तिष्क पर पड़ने वाला एक प्रभाव है।

कला के तत्व में रंग का क्या महत्व है तथा रंग बोध कैसे होता है ?

कला के तत्व में रंग महत्वपूर्ण तत्व है इसके बिना चित्र नीरस रहेगा। किसी भी वस्तु का रंग महत्वपूर्ण होता है लेकिन वह रंग स्थायी नहीं होता है। एक ही वस्तु को अलग - अलग प्रकाश मे रखेंगे तो अलग - अलग रंग दिखाई पड़ेगा। रंग को समझने के लिए प्रकाश एवं अक्षय पटल का सहभागी व्याख्या हो जाता है, इन दोनों में से किसी भी एक का युक्त होना रंग दिखलाई पड़ने मे मुश्किल होना अर्थात् आँखे भी खुली होनी चाहिए एवं प्रकाश भी होना चाहिए। दूसरे शब्दों मे हम यह भी कह सकते है कि जहाँ प्रकाश है वहाँ रंग है रंग स्थाई वस्तु भी नहीं है जैसे पीले रंग का एक डिब्बा सूरज की धूप मे रखेंगे तो उसका रंग अलग होगा। वही डिब्बा किसी कमरे की छाया मे रखेंगे तो अलग रंग दिखाई पड़ेगा, इसी प्रकार वही डिब्बा बंद कमरे मे बिल्कुल कम रोशनी मे

रखेंगे तो अलग रंग दिखाई देगा।

रंग बोध :

सूर्य द्वारा भेजी गई रोशनी के कुछ किरणों को वस्तु अपने आप में समा लेती शेष किरणों को परावर्तित कर देती है यही परावर्तित किरणें आँख के रेटिना में जाती है जहाँ से कोन्स I द्वारा लाल, हरा कोन्स II के बैंगनी और पीला रॉड्स द्वारा काला और सफेद रंग का ज्ञान मस्तिष्क के पास पहुँचता है जिससे हमें उस वस्तु एवं रंग का बोध होता है।

रंग के गुण :

रंग का मान : किसी भी मूल रंगत में सफेद रंग मिला दिया जाये तो उस रंगत का मान बढ़ जायेगा

जैसे - नीले रंग मे या पीले रंग मे सफेद रंग का मिश्रण कर दिया जाए तो उस रंग का मान बढ़ जायेगा।

रंगत : रंगो के मुख्य पिगमेंट (पदार्थ) को रंगत कहते है जैसे लालपन, नीलापन, हरापन इसको प्रकृति जनित या मानव जनित या खनिज जैसा प्राप्त होता है वैसा ही प्रयोग मे लिया जाये रंगत कहलाता है।

सघनता : प्रकृति जनित प्राप्त मुख्य रंगत मे काला रंग मिश्रित कर देने से सघनता का विकास होता है जैसे समुद्र के पानी मे जितनी गहराई हुई वैसे ही पानी का रंग गहरा होता चलता जायेगा अर्थात जितना गहरा पानी उतना ही गहरा रंग हो जायेगा।

रंग की गति (VIBGYOR) : सभी प्रकार के रंगो मे अपनी एक गति होती है जैसे पीला तीव्र गति का लाल मध्यम गति का एवं हरा तथा नीला सबसे धीमी गति का रंग है रंगो के बारे मे जानने के लिए हमे सात रंगो के इन्द्रधनुष को के सातो रंगो की गति समझनी होगी जिसका पैमाना केवल चाक्षुष आधारित है।

V = Voilet : बैंगनी
I = Indigo : नील
B = Blue : नीला
G = Green : हरा
Y = yellow : पीला
O = Orange : नारंगी
R = Red : लाल

उपर्युक्त सभी रंगो को हम आँखो से देखकर ही गति का अहसास कर सकते है लेकिन इसके लिए हमे एक कलाकार के दृष्टिकोण से देखना होगा।

वर्ण रंग का वर्गीकरण : रंगो को अलग २ पहनावे पर वर्गीकृत किया गया, जिससे कलाकार को रंगो के अन्य तानो एवं सेड्स तैयार करने मे परेशानी नही होती है जिसका सबसे प्रमुख विभाजन इस प्रकार है —

मुख्य रंग योजना : मुख्य रंग योजना मे वे रंग सम्मिलित होते है जो किसी भी रंग के मिश्रण से नहीं बनते है बल्कि वे अपना स्वयं का अस्तित्व रखते है, इनकी अनुपस्थिति मे अन्य रंग बनाया जाना असंभव है, इस प्रकार के रंगो मे लाल, पीला, नीला रंग आता है।

द्वितीयक रंग योजना : मुख्य रंग लाल, नीला और पीला होता है, जिनके परस्पर मेल से जो रंग बनते है वे द्वितीयक रंग कहलाते है।

जैसे - मुख्य रंग लाल पीला और नीला होता है जिसमें से किन्हीं दो रंगों को आपस में मिश्रित कर लिया जाये तो तीसरा रंग जो बन रहा है वह द्वितीयक रंग कहलायेगा ।

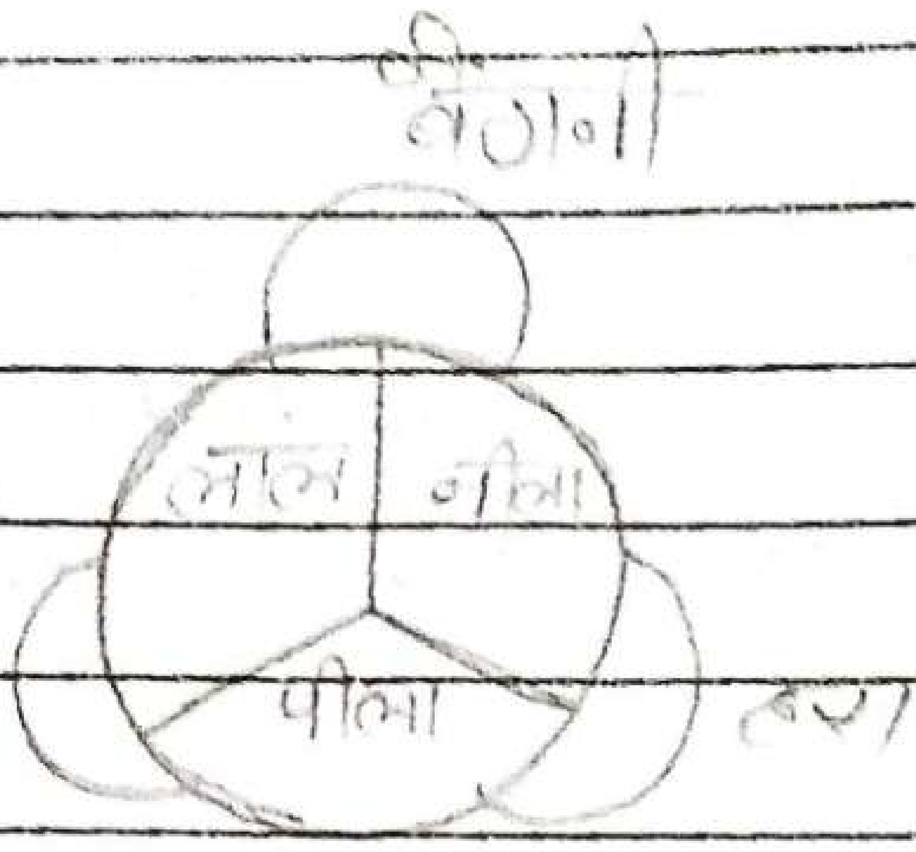

- लाल रंग में नीला रंग मिलाते है तो बैंगनी रंग प्राप्त होता है इसी प्रकार लाल रंग में पीला रंग मिलाते है तो नारंगी रंग प्राप्त होता है । इसी प्रकार नीले रंग में पीला रंग मिश्रित करने पर हरा रंग प्राप्त होगा ।

र्थ : बैंगनी, हरा और नारंगी द्वितीयक रंग कहलायेंगें ।

<u>विरोधी रंग योजना</u> : निर्देशित चित्र के अनुसार हम यह ज्ञात कर सकते है कि मुख्य रंग का विरोधी रंग कौनसा होगा ? जैसे - पीले रंग के सामने शेष बचे हुए दो रंग लाल व नीले के मिश्रण से बनने वाला बैंगनी रंग पीले रंग का विरोधी रंग होगा ।

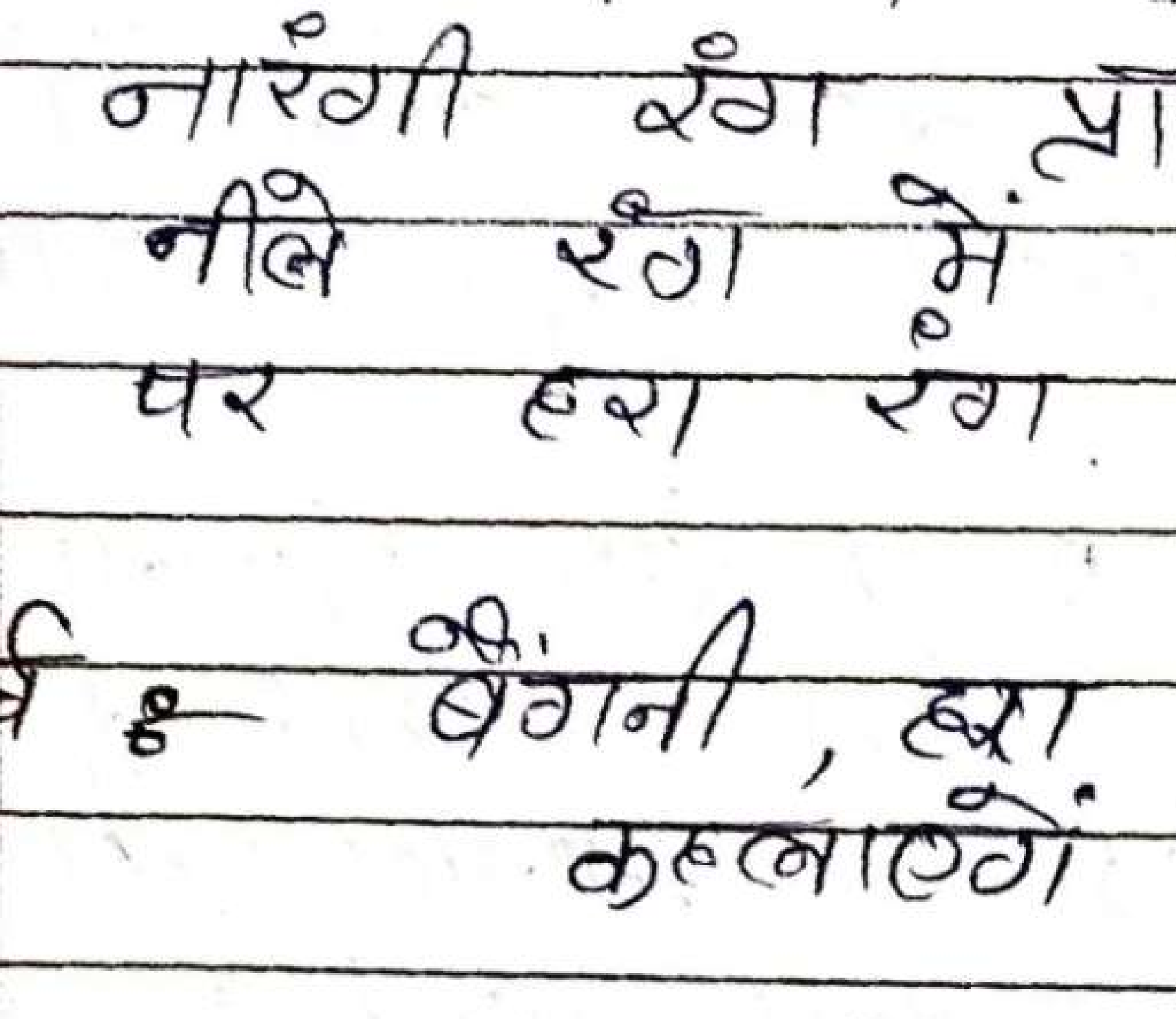

लाल रंग का विरोधी रंग नीला और पीले से मिश्रित रंग हरा प्राप्त होता है यही हरा रंग लाल का विरोधी रंग होगा। इसी प्रकार नीले रंग के सामने लाल और पीले को मिश्रित कर दिया जाए तो नारंगी रंग बनता है, अतः नीले रंग का विरोधी रंग नारंगी होगा।

निष्कर्ष यह है कि लाल रंग का विरोधी रंग हरा, नीले रंग का विरोधी रंग नारंगी और पीले रंग का विरोधी रंग बैंगनी रंग होगा।

समीपवर्ती रंग योजना : दि गई सारणी के अनुसार समीपवर्ती रंग का ज्ञान आसानी से प्राप्त हो सकता है। जैसे - मुख्य रंग - लाल, पीला और नीले को समान अन्तर पर स्थापित कर गया। उसके पश्चात लाल के बांई तरफ पीला रंग है, इसलिए लाल रंग मे पीला रंग मिलाकर दो बॉक्स मे रंग भर दिए। जो लाल और पीले के समीपवर्ती कहलाएंगे।

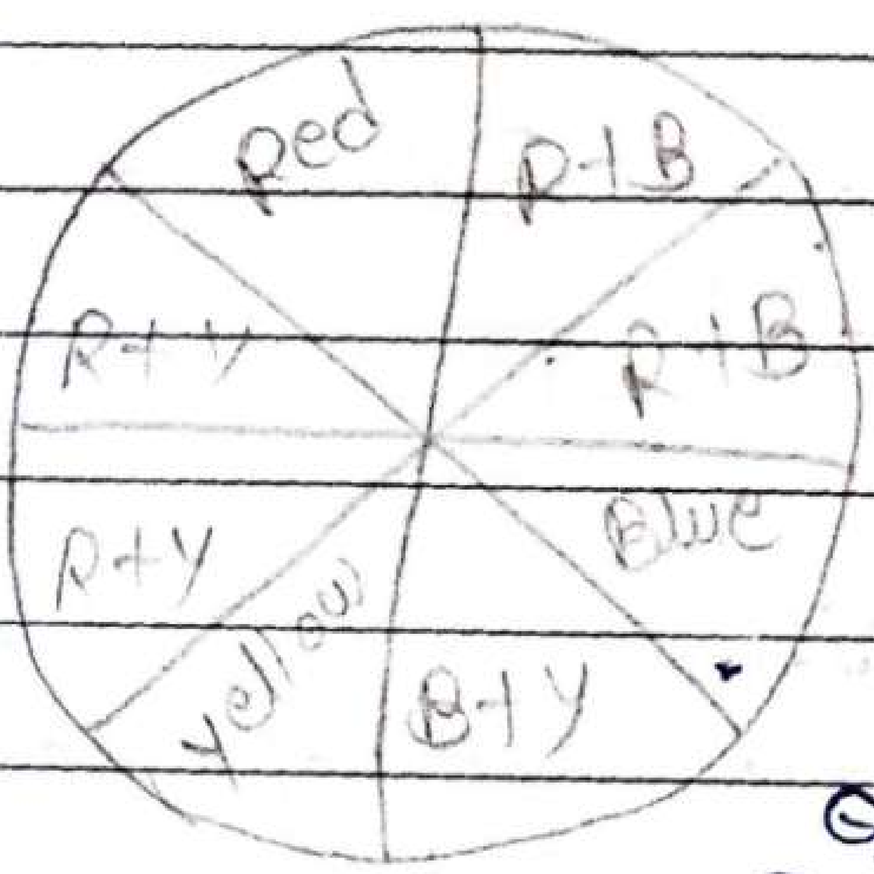

इसी प्रकार लाल रंग के दांई तरफ नीला रंग है नीले के बांई तरफ लाल है तो लाल और नीले को मिलाएंगे, वह दोनो के बीच के मे आ जाएगा। यही लाल और नीले का समीपवर्ती रंग है, इसी प्रकार पीले के दांई तरफ बचे हुए बॉक्स में पीला व नीला मिलाएंगे तो यही नीले और पीले का समीपवर्ती रंग कहलाएगा।

एकाकी रंग योजना : एकाकी रंग योजना वह होती है जिसमें केवल एक ही रंग का प्रयोग किया जाता है अर्थात सम्पूर्ण चित्र एक ही रंग की तान और सघनता द्वारा पूरा किया जाता है।
जैसे - लाल, हल्का लाल और हल्का लाल गहरा लाल आदि।

तटस्थ रंग योजना : इस योजना के अन्तर्गत किसी भी मूल रंगत को प्रयोग में नहीं लिया जाता है, बल्कि उस रंगत की तानों का ही प्रयोग किया जाता है।
जैसे - हल्का लाल, और हल्का लाल, उससे भी हल्का लाल, लाल आदि।

गर्म रंग योजना : जिस रंगत में ऊष्मा अधिक होगी, वह उतना ही गर्म रंग होगा।
जैसे - पीला और लाल गर्म रंग की श्रेणी में आता है। सूर्य पीला या नारंगी होता है जिससे हमें ऊष्मा मिलती है, इसी प्रकार आग, दीपक, बल्ब, लालटेन आदि सभी पीले रंग के होते हैं। जिससे ऊष्मा का अहसास होता है।
इसलिए लाल और पीला या नारंगी रंग गर्म रंग कहलाते हैं।

शीतल रंग योजना : जिस रंग में ऊष्मा न हो और शीतलता प्रदान करता हो, वह शीतल रंग कहलाएगा।

ला
शीतलता का अहसास किया
और पानी का रंग भी नीला
से भी शीतलता प्राप्त होती है।

ाव #
रंग
ा, प्रकाश, बुद्धिमता, प्रसन्नता,
ा का प्रतीक है।

ंग उत्तेजना, क्रोध, संघर्ष,
उष्णता, उल्लास, प्रेम,
का प्रतीक है।

ंग शीतलता, आनन्द, खुशी,
भाव, आकाश, मानसिक अवसाद,
तीक है।

ंग सुरक्षा, शीतलता, विश्राम,
ा, विकास का प्रतीक है।

ग त्याग के प्रतीक, सम्मान,
मृत्यु, प्रेरणा, जोश, वीरता
प्रतीक है।

के प्रतीक, सम्मान एवं
को प्रतीक है।

ा शांति, एकता, उज्जवलता,
विकारहीनता है।

काला : यह रंग अवसाद, अँधेरा, भय एवं बुराई का प्रतीक है।

सलेटी (धूमिल) : यह रंग संयम, नम्रता, तटस्थता का प्रतीक है।

वर्ण

वर्ण (रंग) परिवर्तन

रंगत में परिवर्तन
मान में परिवर्तन
सघनता में परिवर्तन
आकारगत वर्ण परिवर्तन
पीतगत वर्ण परिवर्तन

रंगत में परिवर्तन : जहाँ निकटवर्ती वर्ण परस्पर पूरक रंगों का प्रभाव उत्पन्न करते है जैसे - लाल के पास पीले रंग का रंगांकन करने से पीले रंग पर हरे रंग का प्रभाव दिखाई पड़ता है और पीले रंग पर बैंगनी रंग का प्रभाव दिखाई देता है।

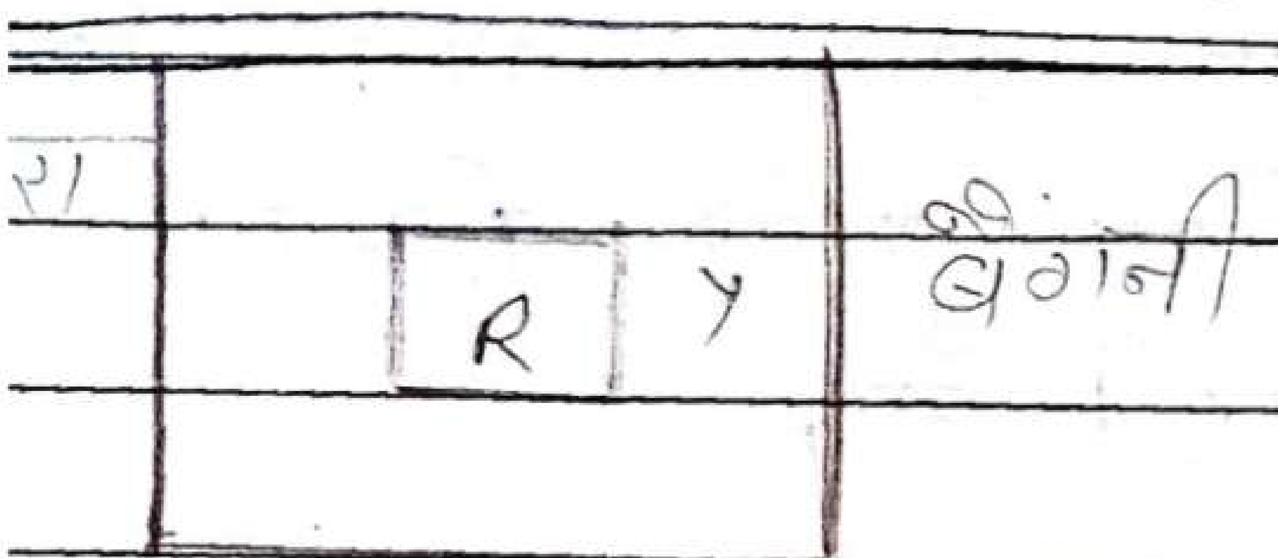

मान में परिवर्तन : किसी भी गहरी पृष्ठभूमि पर हल्के मान की आकृति बनेगी तो हल्का ज्यादा हल्का और गहरा ज्यादा गहराई दिखाई देगा।

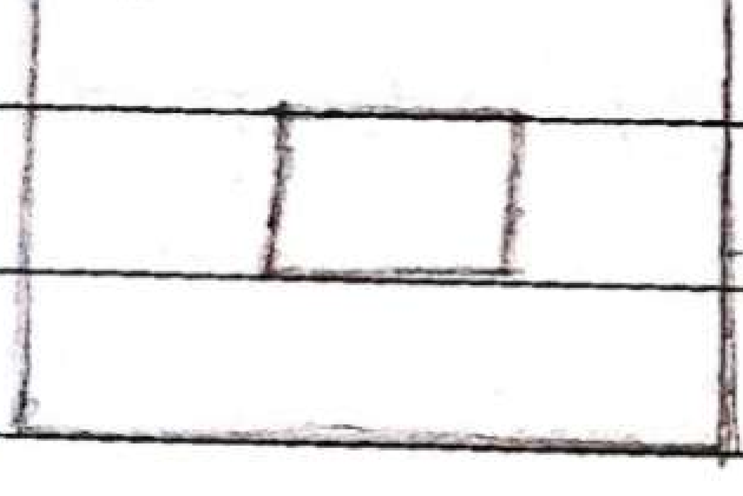

सघनता में परिवर्तन : किसी भी गहरी पृष्ठभूमि पर कम सघनता वाले रंग का प्रयोग करेंगे तो पूरक रंग का प्रभाव होगा।
जैसे - लाल रंगों को धूमिल (ग्रे) रंग को चित्रांकित करेंगे तो धूमिल रंग पर हरे रंग का प्रभाव आयेगा।

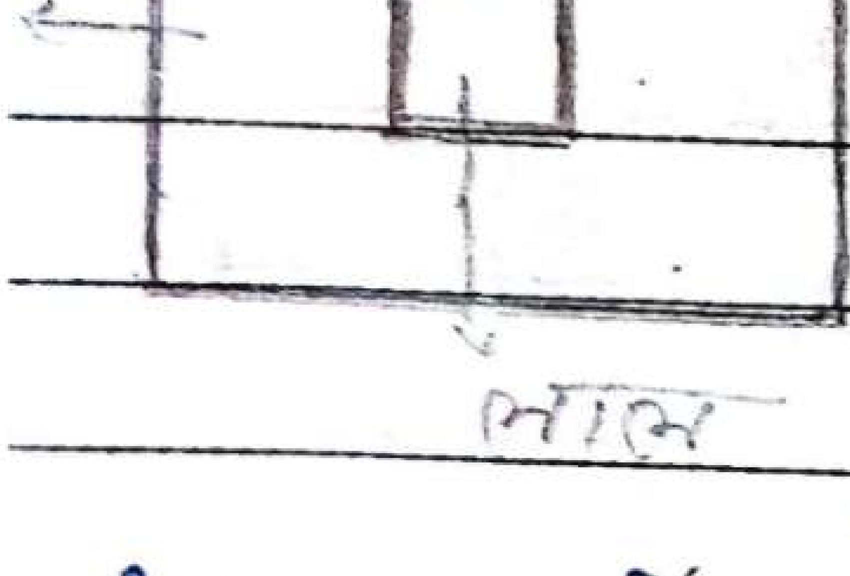

आकारगत वर्ण परिवर्तन : किसी भी पृष्ठभूमि पर एक ही रंग के, एक ही तान का प्रयोग करते हुए चित्रांकन करेंगे तो आकारों की भिन्नता से वर्ण परिवर्तन किया जा सकता है।

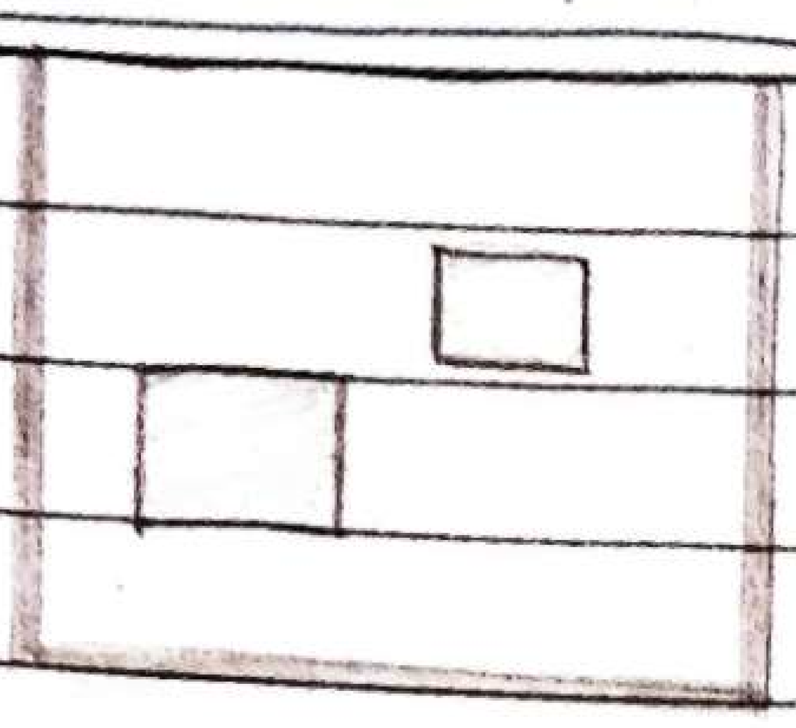

पोतगत परिवर्तन : किसी भी पृष्ठभूमि पर एक समान आकार को बनाया जाना हो तो इसमें विभिन्नता लाने के लिए अलग अलग-अलग पोत का प्रयोग करके भिन्नता लायी जा सकती है।

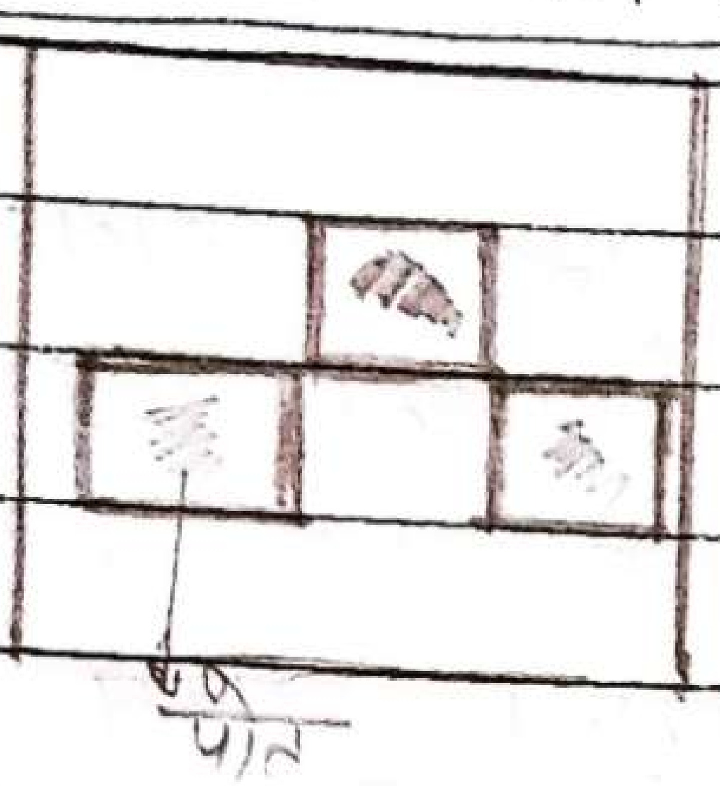

वर्ण प्रतिस्थापन : 'चित्र में रंग शरीर में आत्मा के समान' होता है, इसके अभाव में चित्र निर्जीव जैसा प्रतीत होता है, जिस प्रकार मंदिर में मूर्ति की स्थापना न हो तो वह मंदिर नहीं कहलाएगा। इसके लिए हम निम्न प्रक्रियाओं द्वारा वर्ण नियोजन कर सकते हैं-

पुनरावृत्ति :- किसी भी चित्र में एक ही रंग को बार-बार काम में लेने से यह पुनरावृत्ति की श्रेणी में आता है।

परिवर्तन : किसी भी चित्र में एक जैसे रंगत होने पर तान में परिवर्तन करके एक रसता को समाप्त किया जा सकता है।

(3) विरोधाभास : चित्र में किसी भी मूल रंगत का विरोधाभासी रंग का प्रयोग करके चित्र को पूर्ण किया जा सकता है।

(4) सहयोग : रूप एवं आकारों के अनुपात के अनुसार रंगों का प्रयोग किया जा सकता है।

(5) संतुलन : आकारों एवं रंगों के भाव के द्वारा संतुलन पैदा किया जा सकता है। जैसे - छोटा आकार लाल रंग का है एवं बड़ा आकार आसमानी रंग का है तो आकार भिन्न 2 होते हुए भी संतुलन किया जा सकता है।

(6) अनुक्रम : इसके अन्तर्गत किसी भी रंग का बार2 प्रयोग करना तथा किसी भी रूप, का आकार को बार 2 प्रयोग करके संतुलन किया जा सकता है।

(7) संगती : किसी भी चित्र में एक ही वर्ग के रंगों का प्रयोग करने पर भी संगती स्थापित हो जाएगी। जैसे - उष्ण रंगों का प्रयोग करने से स्वाभाविक रूप से संगती स्थापित हो जाएगी। ठीक उसी प्रकार शीतल रंगों का प्रयोग करने से भी संगती स्थापित हो जाएगी।

* तान *

तान किसे कहते है ? तथा तान कितने प्रकार की होती है

तान की परिभाषा : तान किसी भी रंगत को हल्केपन और गहरेपन का द्योतक है। इस तान द्वारा रंग किसी भी रंग का मान बढ़ाया जा सकता है तथा मान घटाया जा सकता है
जैसे- किसी भी रंगत में सफेद रंग मिश्रित करने के पश्चात मान को बढ़ाया जाता है और उसी मूल रंगत में काला रंग मिश्रित करके मान घटाया जा सकता है।

तान के तीन प्रकार -
हल्का (प्रकाश)
मध्यम (रंगत)
गहरा (साया)

हल्का (प्रकाश) : किसी भी रंगत मे सफेद रंग मिश्रित करना प्रकाश की श्रेणी में आता है जिसके द्वारा किसी भी रंग में मान को बढ़ाना होता है
जैसे - लाल रंग मे सफेद मिश्रित करने से गुलाबी रंग बन जाएगा, तो लाल रंग का मान बढ़ जाएगा इसी प्रकार नीले रंग में सफेद मिश्रित कर दिया जाए तो आसमानी रंग हो जाएगा जो मूल रंगत के प्रकाश की श्रेणी में होगी अर्थात नीले रंग का मान बढ़ जाएगा।

ठीक इसी प्रकार पीले रंग में सफेद रंग मिश्रित करने के पश्चात लाइट पीला रंग बन जाएगा और पीले रंग का मान बढ़ जाएगा एवं पीले रंग मे काला रंग मिश्रित करने से मान घट जाएगा।

मध्यम (मूल रंगत) : मध्यम वह है जो मूल रंगत होती है जैसे लाल पन, नीलापन, हरापन अर्थात किसी भी मूल रंग में अमिश्रित रंग का प्रयोग होता है, वह रंगत मध्यम रंगत है।

गहरा (साया) : किसी भी मूल रंगत में काला रंग मिश्रित करने से साया का प्रभाव होता है।
जैसे — Red + Black, Blue + Black, yellow + Black मिश्रित करने से साया का निर्माण होता है।

तान के प्रभाव :

विभाजन पद्धति :

विभाजन पद्धति द्वारा काले और सफेद को पास रखकर खींचकर बनाया जा सकता है, जिसमें काले और सफेद वाले भाग बराबर भी हो सकते है. शेष भाग मे अन्य तानों का प्रयोग किया जा सकता है

(2) परिवर्तन पद्धति :

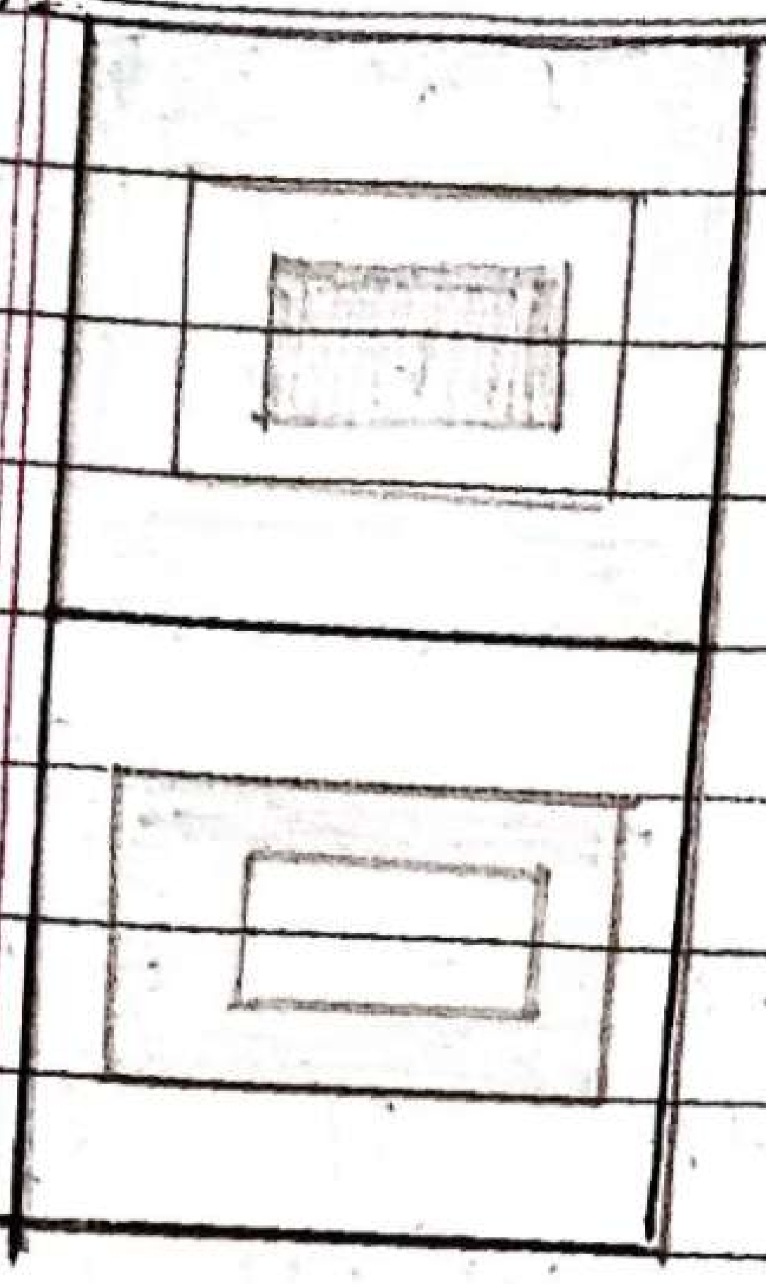

इस पद्धति द्वारा सक्रिय एवं सहायक अंतराल मे परिवर्तन करके तानो का प्रयोग किया जाए तो नवीन अंतराल का विकास होता है।

(3) क्रम स्थापना :

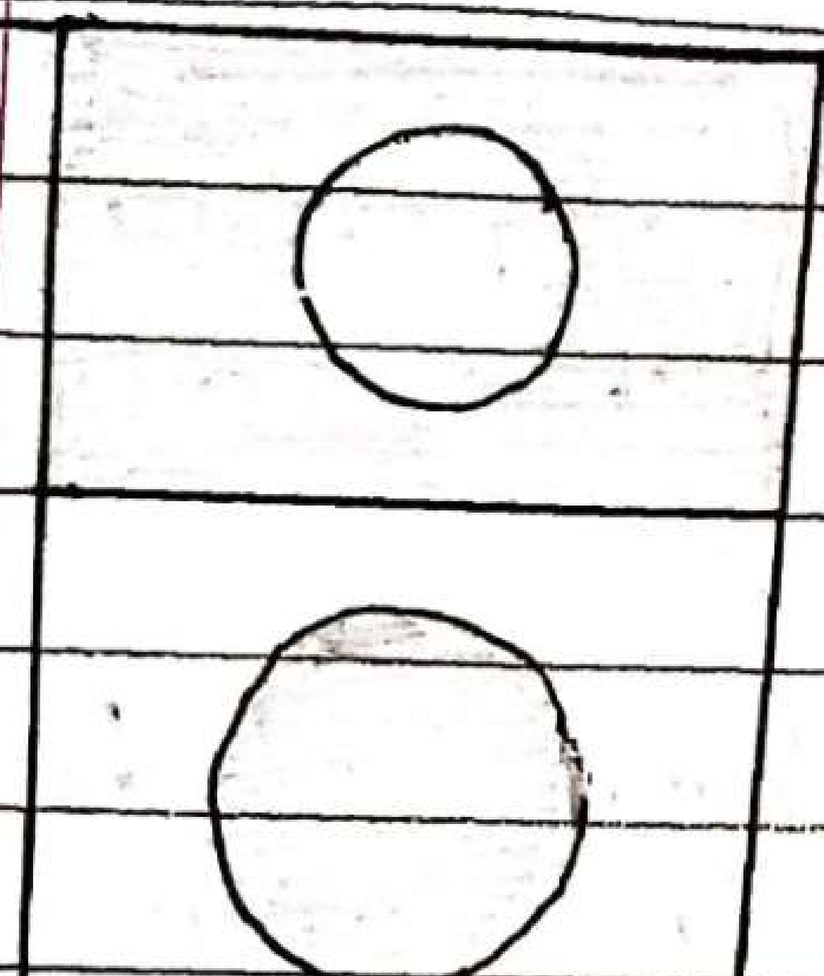

किसी भी वस्तु आकृति मे शून्य अंतराल का विकास हो रहा हो तो उसकी स्थिति परिवर्तन कर देने से अथवा तान का परिवर्तन कर देने से अंतराल का विकास हो जाए।

4. क्षेत्र :

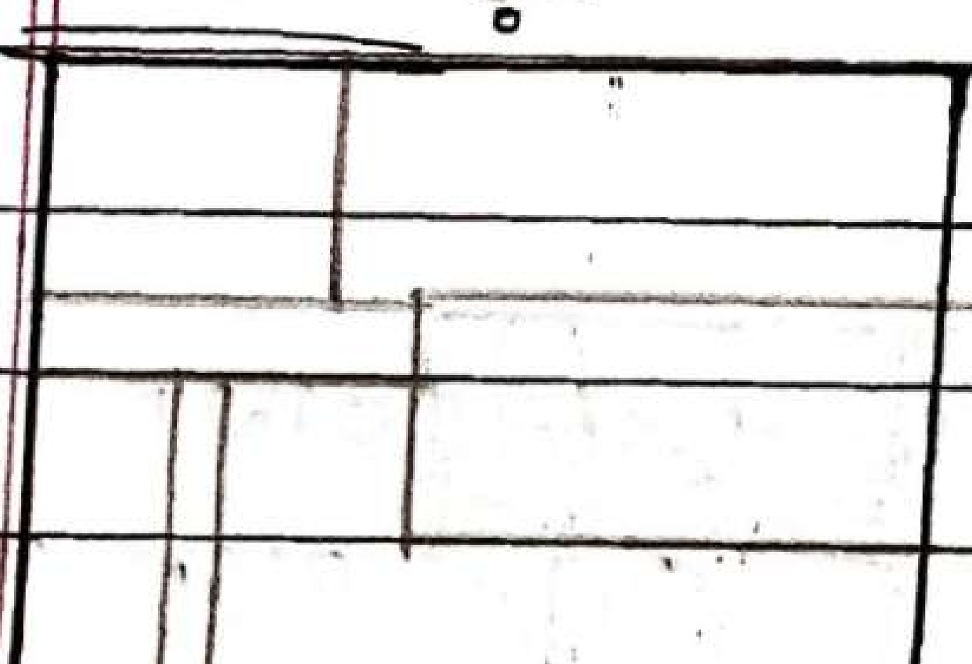

किसी भी आकृति मे क्षेत्र का बहुत ही महत्व है जैसे एक ही चित्र मे दो समान आकृतियां हो तो दोनों मे एक ही तान का प्रयोग करना होगा, लेकिन अगर आकृति छोटी और बड़ी है तो तान का प्रभाव बढ़ जाएगा जिसमे बड़ी आकृति मे हल्की तानो का प्रयोग करके चित्र को खींचकर बनाया जा सकता है, जिससे बड़े आकारो में प्रफुल्लता, उज्जवलता, स्वच्छंदता के प्रभाव भी आ जाते है।

तान का महत्व एवं प्रयोग

चित्र तल हमेशा द्विआयामी होता है जिस पर चित्रकार त्रिआयामी चित्रण करने का प्रयास करता है जिसके लिए आवश्यक रूप से तानों का प्रयोग करना होगा तो ही त्रिआयामी चित्रण संभव है कलाकार केवल त्रिआयामी चित्रण का भ्रम पैदा करता है।

किसी भी चित्र में तान के द्वारा ही परिप्रेक्ष्य का निर्माण किया जाता है, बिना तान के कभी भी परिप्रेक्ष्य का निर्माण नहीं किया जा सकता। अतः तान को गणितीय निर्माण नहीं किया जा सकता अतः तान को गणितीय नियमों के अनुसार अंकित करना आवश्यक है अन्यथा परिप्रेक्ष्य समाप्त हो जाएगा। इसलिए परिप्रेक्ष्य के लिए तान अति आवश्यक है।

सहयोग संगति एवं संतुलन के लिए भी तान का होना परम आवश्यक है।

Date - 17/9/24. { * पोत * }
{ (TEXTURE) }

परिभाषा : किसी भी पदार्थ की अनुभूति छूना ही पोत कहलाता है,

Q.1 पोत क्या होता है ? चित्रकला में पोत का महत्व क्या है ?

Q.2 पोत को परिभाषित कीजिए, आधुनिक युग की चित्रकला में पोत का योगदान क्या है ? परिभाषित कीजिए।

* इस संसार जगत में प्रकृतिजनित कई चीज़ें वस्तुएँ होंगी जिनको छूने से अलग २ अनुभूति होती है। साथ ही मानव द्वारा निर्मित वस्तुओं में भी पोत विद्यमान होता है।
जैसे - । टेबल, कुर्सी, दिवार, चाकू, छुरी, ईंट आदि।

भावार्थ : भावार्थ यह है कि चित्रकार का यह दायित्व होना चाहिए कि एक मांस का टुकड़ा पत्थर के टुकड़े जैसा होता है और देखने में रंग भी समान होता है, किन्तु मांस को छूने से गुदगुदा महसूस होगा। जबकि पत्थर को छून से कठोरता का अहसास होगा।
अतः चित्रकार को मांस का चित्र बनाते समय उसका घनत्व तथा चिकनापन एवं देखने में सादृश्य होना आवश्यक है यही पोत कहलाता है,

इसी प्रकार मानव निर्मित अनेक पदार्थ भी जिनको भी अनुभूत किया जाता है। जैसे- दिवार बोर्ड ब्लेकबोर्ड बोर्ड आदि एक ही दिवार के हिस्से है, किन्तु तीनो मे पोत अलग २ है। जिसका ज्ञान कलाकार को आवश्यक रूप से होना चाहिए।
पोत तीन प्रकार से प्राप्त होते है-

प्राकृत
अनुकृत
सृजित

प्राकृत : इसी श्रेणी में वे सभी पोत आते है जो ईश्वर प्रदत्त है
जैसे- पहाड़, पेड़, पौधे, पानी, पत्तियाँ, फल फूल, मिट्टी आदि।
जो हमें प्रकृति से प्राप्त होती है और चित्रकार को अपने चित्र में इनका समावेश करना भी आवश्यक है
अतः प्रकृतिदत्त जितने भी पदार्थ है उनका अध्ययन करना अतिआवश्यक है इसमे पेड़ो की पत्तियों को सुखाकर भी अध्ययन किया जा सकता है।

अनुकृत : इसमे वे सभी वस्तुएं आयेगी जिनका निर्माण मानव ने अपनी बुद्धि से किया है और उस वस्तु या पदार्थ के धरातल के गुण को चित्र में समावेश करना होता है।

नियोजन प्रभाव ... ...
अंकन जितना श्रेष्ठ हो उतना ही अच्छा
चित्रण कहलायेगा।

सृजित : आधुनिक चित्रकला में चित्रकार प्रकृति की नकल न करके अपने स्वविवेक से एक नये धरातल का आविष्कार करता है।
जैसे - तेल रंग में पानी मिश्रित करके चित्रांकन करना फेविकोल लगाकर रेत को चिपकाना टूथब्रुश द्वारा स्प्रे करना आदि अनेक विधियों द्वारा नये नये पोत का आविष्कार किया है।

समसामयिक चित्रकार पोत द्वारा ही श्रेष्ठतम चित्र बना रहे हैं जिसका प्रचलन 19वीं सदी से लेकर आज तक कभी भी कम नहीं हुआ और संभवतया कभी कम होगा भी नहीं।
अतः श्रेष्ठतम चित्रकार चित्र में जितने अच्छे पोत का निर्माण करेगा, उतना ही श्रेष्ठ चित्र होगा।

पोत का वर्गीकरण व प्रभाव -
1. कोमल
2. चिकनापन
3. कठोर
4. समतल ।

1. **कोमल** : कोमल धरातल वह होता है जिसको छूने से गुदगुदापन महसूस होता हो अर्थात् समतल पृष्ठभूमि से भी अधिक कोमल धरातल का गुण होना आवश्यक है
जैसे - पूर्व में हमने पढ़ा की मांस का टुकड़ा कोमल और गुदगुदा होता है, इसी प्रकार फूल भी कोमल होते हैं ।

2. **चिकनापन** : जिस धरातल पर तैलीय प्रभाव हो या तेल डाल दिया जाए उसे छूने से जो अनुभूति पैदा होती है वही इसका प्रभाव है ।
जैसे - फर्श पर तेल गिर जाना ।

3. **कठोर** : कठोर वह धरातल है जिसको छूने पर दबाया ना जा सके, न वह अपना आकार बदल सकता हो अर्थात् पत्थर की कोई भी वस्तु को छूने से जो अनुभूति पैदा होती है, वही कठोरता का प्रभाव है ।

जैसे - पत्थर को छूना, दिवार को छूना, लकड़ी से निर्मित किसी भी वस्तु को छूना लोहे अथवा इस्पात (धातु) आदि की वस्तुओं को छूने से प्रभाव पैदा होता है।

समतल / खुरदरा - इस प्रकार का धरातल देखने में तो बराबर की मोटाई लं. चौ. का होता है किन्तु उसके बने हुए texture (पोत) को छूने से पता पड़ता है कि यह धरातल समतल है, किन्तु खुरदरा भी है।
जैसे - दरी, चटाई।

पोत व अन्तराल :

पोत के द्वारा अन्तराल का विकास होता है क्योंकि पोत को नजदीक से देखने पर अलग प्रभाव प्रतीत होते है जबकि उसी धरातल को दूर से देखते है तो पोत सघन में अन्तर आता है।
जैसे - हम सड़क पर खड़े होते है तो हमारे पास की सड़क में खुरदरेपन की झलक अधिक दिखाई देती है, जबकि जैसे 2 दूरी बढ़ेगी वैसे 2 गड्ढे कम दिखाई देंगे। इसको चित्र में अंकन करने पर अन्तराल का विकास होगा।

इसी प्रकार एक ही प्रकार के वृक्ष पर एक जैसे ही पोत दिखाई देंगे लेकिन जो वृक्ष दूर है उसके पोत में अन्तर अवश्य आएगा।

पोत व मूर्तिकला — आधुनिक युग में मूर्तिकला का महत्व बढ़ गया है उसको उत्तम कोटि का बनाने के लिए पोत का सहयोग लेकर श्रेष्ठ मूर्ति बनायी जाने लगी है। जैसे - चेहरे पर कोई भी निशान उठे या दाढ़ी - मूछ बनाने हेतु पोत का प्रयोग करके श्रेष्ठ मूर्ति बनायी जाने लगी है जो त्रिआयामी अंकन के समान ही होने लगी। इसी प्रकार आँखो के पास के गड्ढे का या अन्य कोई भाव चेहरे पर डालना हो तो पोत का कार्य बढ़ जाता है।

* पोत का महत्व — आधुनिक युग में पोत का इतना महत्व हो गया जिसके बिना किसी भी कलाकृति का निर्माण होना असम्भव है, क्योंकि प्राचीन काल में चिकने अथवा समतल पोत का प्रचलन था किन्तु वर्तमान में चाहे पेंटिंग हो, मूर्ति हो, स्थापत्य हो भवन निर्माण हो कहीं पर भी मानव पोत के बिना संतुष्ट नहीं होता है। जैसे — बड़े२ खम्भों पर पत्थर की टाइल लगाई जाती है या सेरेमिक टाइल लगाई जाती है।

अथवा छोटा भवन भी है तो उसमे साधारण रंग करवाने की बजाय Texture (पोत) करवाया जाता है।

आधुनिक युग के चित्रकार भी लकड़ी पर, मार्बल पर, कागज की और पर कपड़े पर अनेक चित्रण करते है जिसमे आकृति का महत्व नही होता है लेकिन केवल पोत का ही महत्व होता है जिसके कारण आज वे विश्व ख्याति प्राप्त चित्रकार है।

Unit - III

Unit - IIIrd

Date - 24/9/24

{ * अन्तराल *
[Space] }

Q. अन्तराल से आप क्या समझते है? अन्तराल व्यवस्था एवं अन्तराल का महत्व लिखिए।

→ 'अन्तराल' को अंग्रेजी में 'Space' कहते है जबकि Space का हिन्दी अनुवाद 'अंतरिक्ष' होता है।

→ अंतराल का महत्व प्राचीन काल से है, जैसे अजन्ता के समय से निरन्तर विकास होता गया है, इस विकास के क्रमिक उदाहरण तो प्राप्त नहीं हैं किन्तु साहित्यों में इसका सम्पूर्ण वर्णन किया गया है।
जैसे - विष्णुधर्मोत्तर पुराण' में 'स्थान' से जाना गया है, जबकि 'मध्यकाल' में समरांगण सूत्रधार में भूमि बंधन के नाम से जबकि 'अभिलाषितार्थ' चिंतामणि में 'स्थान निरूपण' के नाम से तथा आधुनिक युग में 'अन्तराल' के नाम से जाना जाता है।

परिभाषा - "द्विआयामी चित्रभूमि ही अन्तराल है"

अर्थात् चित्रकार जिस धरातल पर चित्रण कर रहा है वही अंतराल है।
चित्रकार को उस भूमि का एक बिन्दु बढ़ाते है घर्षण, तनाव, विभाजन पैदा होने लगता है।

किन्तु यह बिन्दु कैसे ... प्रतीक बन
जाए तो सौहार्द्र का
जाए या दो या तीन आकृतियों में
गति पैदा कर दें अर्थात दर्शक की
आँखें पहली आकृति से अन्तिम आकृति
तक स्वभाविक रूप से चले जाए तो
ओपन अन्तराल होगा।

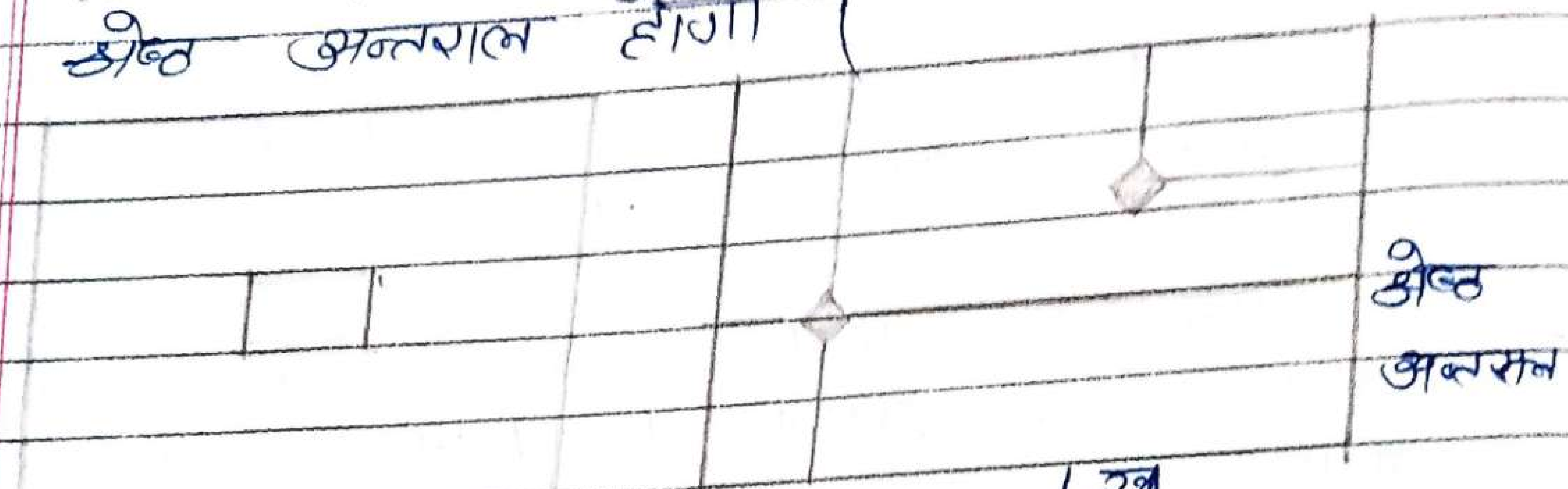

(क) (ख)

→ उपरोक्त चित्र 'क' में ठीक बीच में एक बिन्दु बनाते ही संघर्ष पैदा हो जाता है व चित्रभूमि कई भागों में बटी हुई सी नजर आ रही है, जबकि चित्र 'ख' में सम्पूर्ण चित्रभूमि पर दृष्टि तीनों आकृतियों पर क्रमिक रूप से गतिवान है, इसलिए ओपन अंतराल कहलाएगा।

★ **अंतराल का स्वरूप :-** अंतराल किसी भी चित्रभूमि पर अनेक रूप को व्यवस्थित रूप से चित्रांकन करना होता है।

जैसे - किसी चित्र में तीन गिलास हो तो किस क्रम में, कितना बड़ा गिलास होगा?

इसी के अन्तर को अन्तराल कहते है
जैसे - संगीत मे स्वर का अंतराल
होता है बोलने मे शब्दो का अन्तराल
होता है शब्दो मे अक्षरो का अन्तराल
होता है किसी खालीपन को सुव्यवस्थित
किया जाना होता है।

अंतराल का वर्गीकरण -
सक्रिय अन्तराल
सहायक अन्तराल

अंतराल दो प्रकार के होते है, मुख्य भूमिका मे जो आकृति होती है वही सक्रिय अंतराल होता है
इसके अतिरिक्त मुख्य अंतराल को व्यवस्थित करने हेतु जो अन्य रूपों का या रेखाओ का प्रयोग करके व्यवस्थित करना होता है, वह सहायक अंतराल कहलाता है।

अंतराल का विभाजन -
सम विभक्ति
असम विभक्ति।

सम विभक्ति - समविभक्ति अंतराल का सबसे सरल एवं सबसे प्राचीन सिद्धान्त है, जिसमें चित्रभूमि को किन मध्य भाग मे विभाजित करके आयताकार त्रिभुज आदि विभाजन करके एक सरल अन्तराल का विकास किया जाता है।

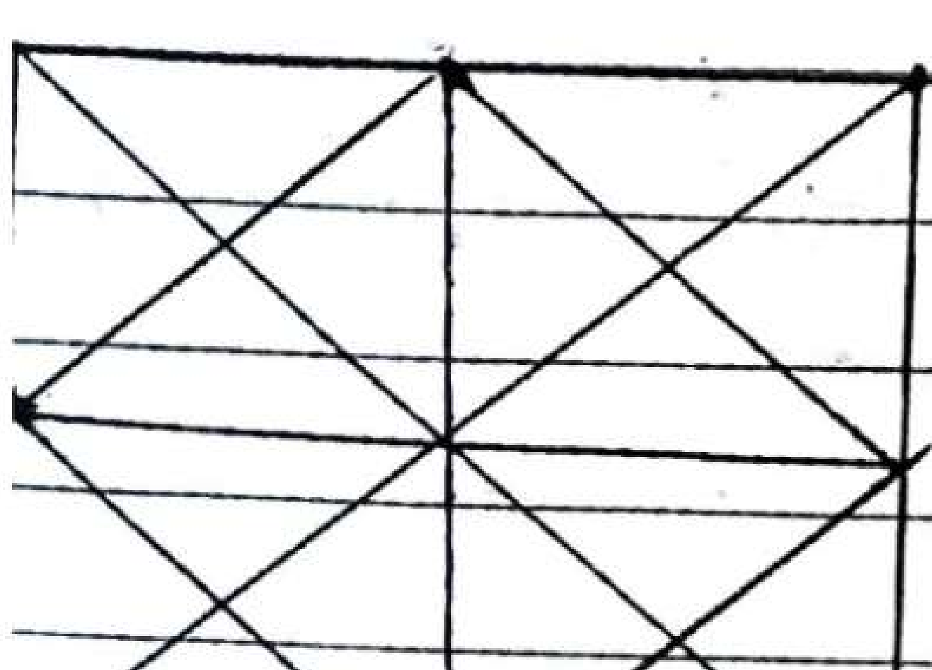

1 'ख'

जिसका चित्र संख्या 1 'ख' में अध्ययन किया जा सकता है।

2. असमान विभक्ति –

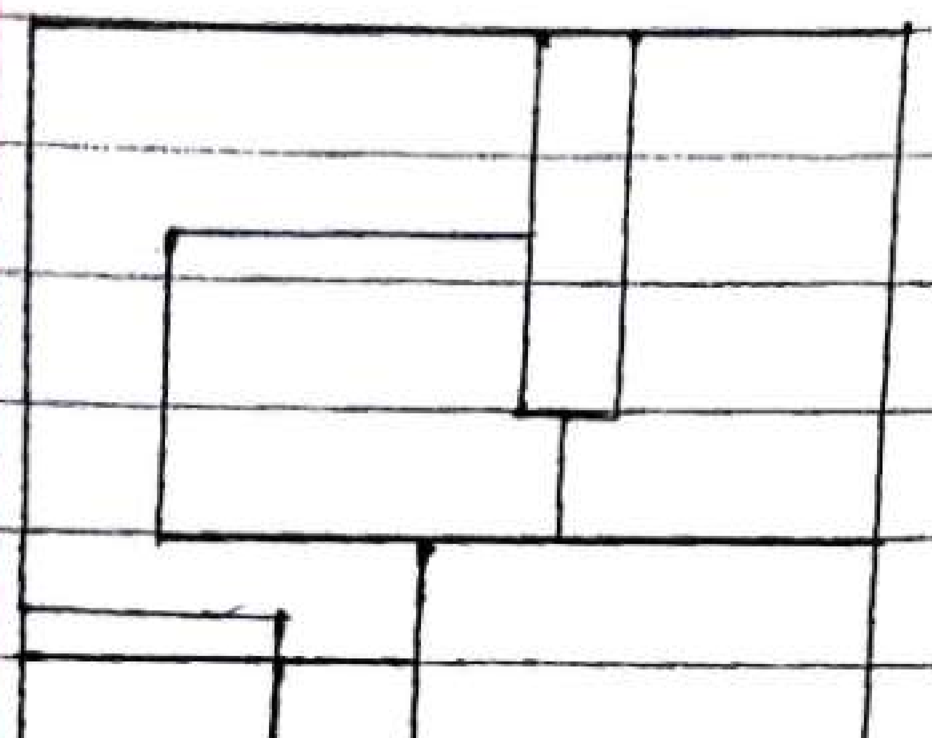

2 'ख'

यूरोपियन चित्रकारों ने 18वीं सदी में समविभक्ति अंतराल से अलग होकर एक नये अंतराल का विकास किया जो घनवाद के नाम से प्रचलित हुआ। जो आज तक कलाकारों में बहुत ही रुचिकर अंतराल की स्थापना करने का सिद्धान्त प्रतिपादित किया यह सिद्धान्त रुचिकर तो है किन्तु इसके निर्माण में पूर्ण सावधानी बरती जानी चाहिए अन्यथा चित्र दो भागों में बंटा हुआ सा प्रतीत होगा। इस सिद्धान्त का अध्ययन चित्र 2 'ख' में किया जा सकता है।

* **स्वर्णिम पद्धति** :– आधुनिक यूरोपियन चित्रकारों ने एक स्वर्णिम पद्धति का विकास किया जो परम्परागत दोनों पद्धतियों से भिन्न है लेकिन गणितीय नियमों के अनुसार बहुत ही सटिक विभाजन किया गया है जिसमें एक बड़े क्षेत्र के साथ में दो छोटे क्षेत्रों को इस प्रकार से संतुलित किया जाए कि दोनों छोटे आकार एक बड़े आकार को संतुलित कर सके।

जिसका चित्र संख्या 1 'ख' में अध्ययन किया जा सकता है।

2. असम विभक्ति - यूरोपियन चित्रकारो ने 18 वी सदी में समविभक्ति अंतराल से ऊपर होकर एक नये अंतराल का विकास किया जो घनवाद के नाम से प्रचलित हुआ। जो आज तक कलाकारों में बहुत ही रुचिकर अंतराल की स्थापना करने का सिद्धान्त प्रतिपादित किया यह सिद्धान्त रुचिकर तो है किन्तु इसके निर्माण में पूर्ण सावधानी बरती जानी चाहिए अन्यथा चित्र दो भागों में बंटा हुआ सा प्रतीत होगा। इस सिद्धान्त का अध्ययन चित्र 2 'ख' में किया जा सकता है।

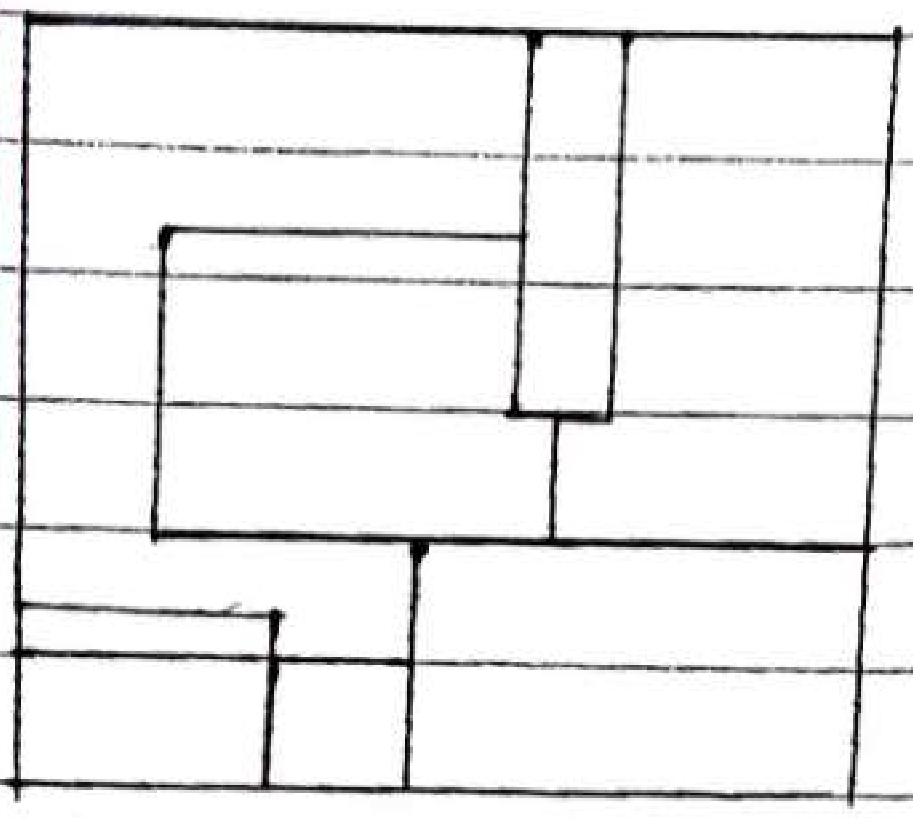

2 'ख'

स्वर्णिम पद्धति : आधुनिक यूरोपियन चित्रकारों ने एक स्वर्णिम पद्धति का विकास किया जो परम्परागत दोनो पद्धतियो से भिन्न है लेकिन गणितीय नियमो के अनुसार बहुत ही सटिक विभाजन किया गया है जिसमे एक बड़े क्षेत्र के साथ में दो छोटे क्षेत्रो को इस प्रकार से संतुलित किया जाए कि दोनो छोटे आकार एक बड़े आकार को संतुलित कर सके।

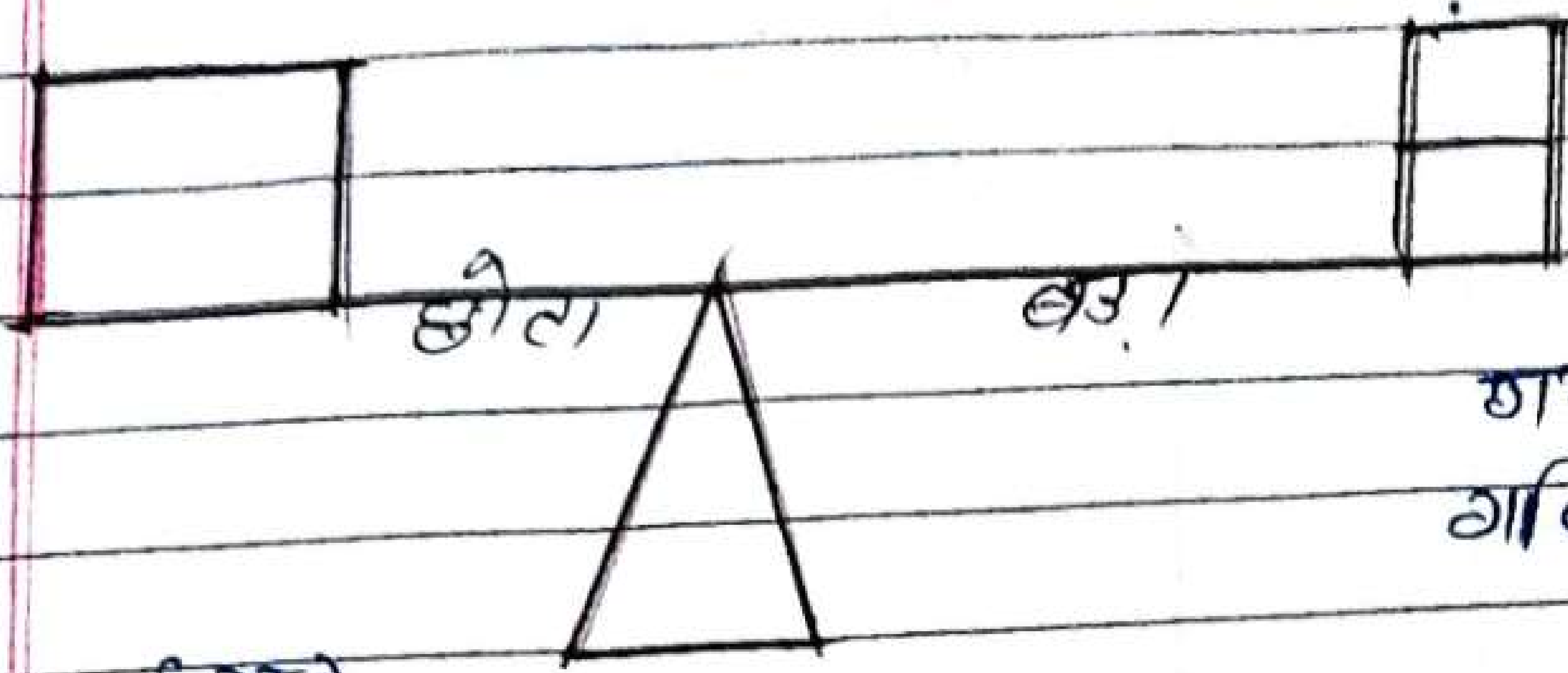

जैसे चित्र संख्या 1 'अ' में दर्शाया गया है जिसका गणितीय सूत्र निम्न है -

चित्र 1 'अ'

अब : अस :: अस : सब

अ — स — ब

★ **चित्रभूमि के अन्तराल में रूप व्यवस्था** - जैसा कि हमने अध्ययन किया कि चित्रकार के लिए चित्रभूमि ही अन्तराल है। किन्तु चित्रभूमि द्विआयामी है, जिसपर त्रिआयामी का प्रभाव दर्शाना होता है जिसके लिए चित्रकार को किस रूप को किस स्थान पर और कितना बड़ा या छोटा चित्रांकित किया जाये कि चित्र में त्रिआयामी का प्रभाव आने लगे जिसके कुछ सिद्धान्त निम्न है -

1. अतिअच्छादित
2. आकारो मे भिन्नता
3. आकारो का स्थान परिवर्तन
4. रेखीय क्षय वृद्धि द्वारा
5. वातावरणीय क्षय वृद्धि।

1. **अतिअच्छादित** - किसी भी चित्रभूमि पर किसी भी आकार को सम्पूर्ण चित्रित कर देना तथा द्वितीयक आकार को उसके पीछे दबाकर चित्रण करना, तीसरे और चौथे आकार को दूसरे आकार के पीछे चित्रण करना होता है

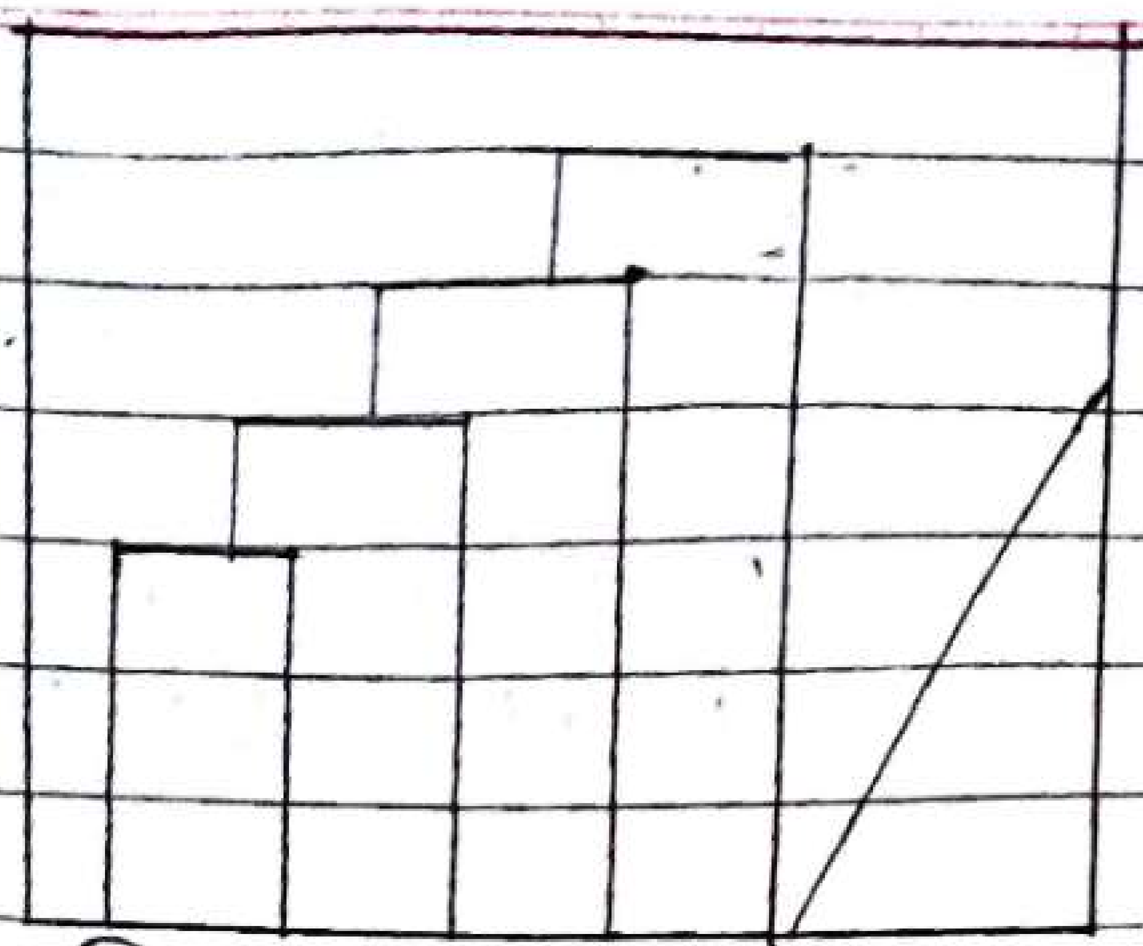

जैसा कि 3 'ख' मे किया गया है।

चित्र - 3 'ख'

2. **आकारो मे भिन्नता** – किसी भी चित्र मे उसके विषय के प्रभाव के अनुसार आकारो मे छोटा या बड़ा चित्रण किया जाता है, जैसे अजंता के चित्र, माता व पुत्र मे गौतम बुद्ध को विशालकाय आकृति मे चित्रण किया गया है जबकि शेष अन्य को छोटा चित्रित किया गया है, इसी प्रकार हनुमान को अन्य वानरो से बड़ा आकार मे चित्रण किया जाता है, जिससे हनुमान की महत्ता प्रभावित हो सके। इसी प्रकार राम, लक्ष्मण, कृष्ण आदि को महत्व के अनुसार छोटा या बड़ा चित्रण करके अन्तराल का विकास किया गया है।

3. **आकारो के स्थान परिवर्तन द्वारा** – एक ही समान आकृति को स्थान परिवर्तन करके अन्तराल का विकास किया जा सकता है, जैसे चित्र संख्या 3.D मे चित्रण किया गया है।

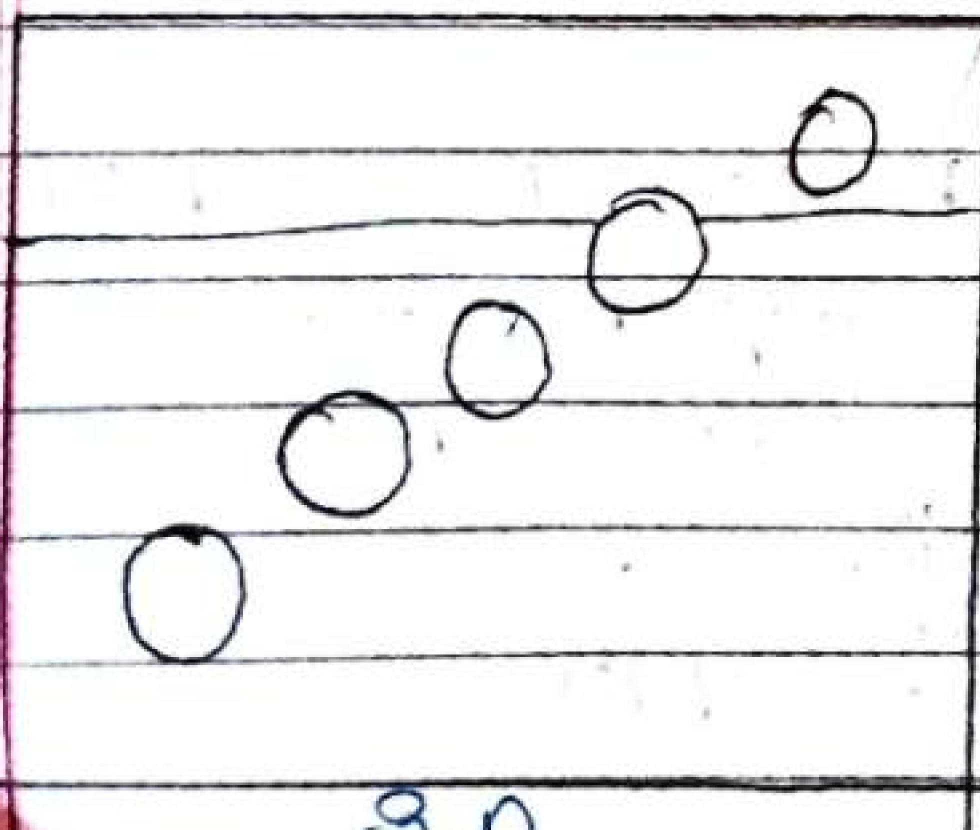

3.D

जिसमें क्षितिज रेखा खींचते ही तय आकार के समीपता व दूरस्थ आकृति का बोध होने लगता है।

4. रेखीय क्षय वृद्धि द्वारा :- कलाकार अपने चित्रों में अनेक प्रकार की रेखाओं का प्रयोग करता है जिसमें सबसे नजदीक होने वाली आकृति को बड़े आकार में तथा पुष्ट रेखाओं से चित्रित करता है। मध्यम दूरी की आकृति को सामान्य रेखाओं द्वारा हल्की

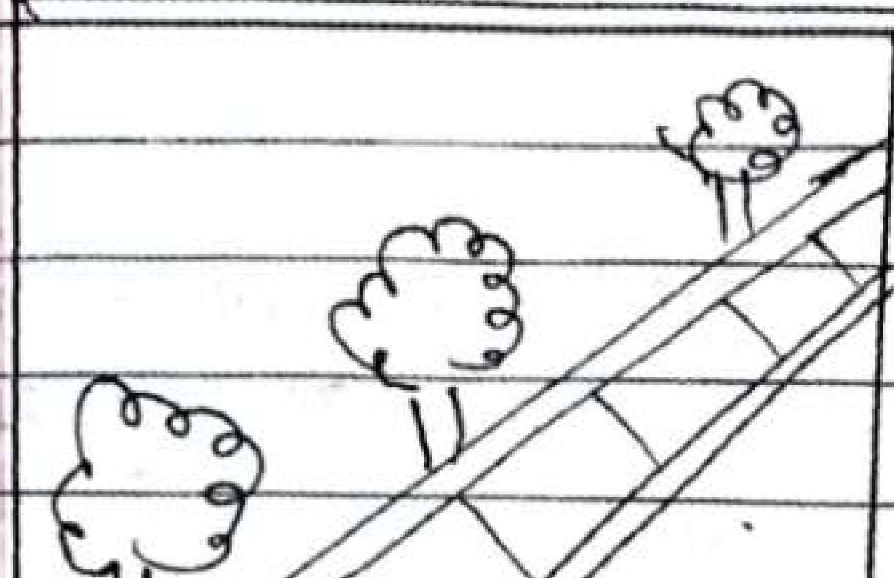

4D

रेखाओं का प्रयोग करके करता है जबकि सबसे दूर वाली आकृति को सबसे छोटे आकार में तथा छोटी-छोटी रेखाओं द्वारा चित्रण करके अन्तराल का विकास करता है जैसे कि चित्र संख्या 4D में चित्रण किया गया है।

5. वातावरणीय क्षय वृद्धि - चित्रकार विभिन्न मौसम में अनेक आकृतियों का अध्ययन करता है, साथ ही परिप्रेक्ष्य का आविष्कार भी करना होता है, तो जैसे जैसे कोहरे में धुंधली दिखाई देती है वैसी ही दूर की आकृति अस्पष्ट हो जाती का चित्रण करना होता है।

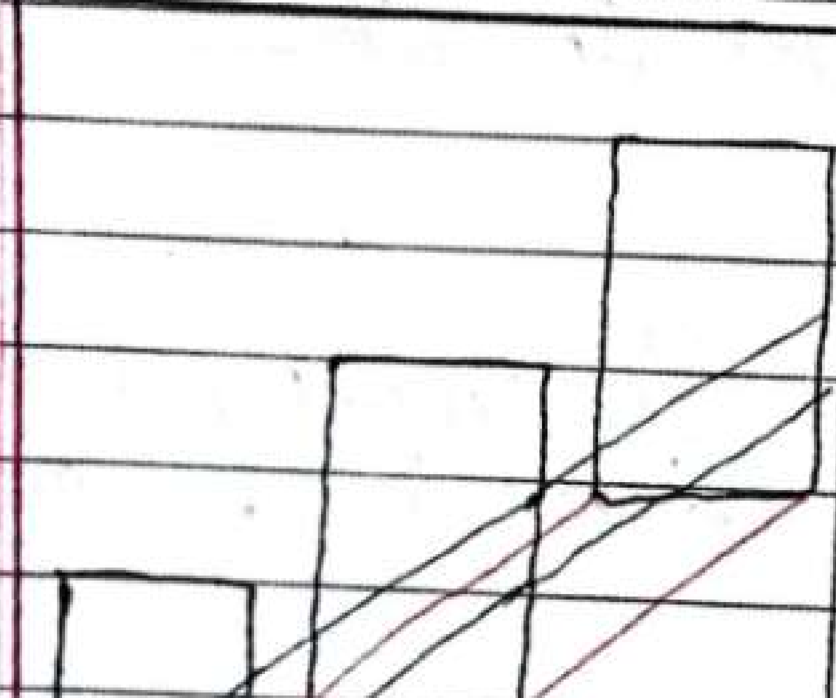

5D

जिसमें क्षितिज रेखा खींचते ही हर आकार के समीपता व दूरस्थ आकृति का बोध होने लगता है।

4. रेखीय क्षय वृद्धि द्वारा :- कलाकार अपने चित्रों में

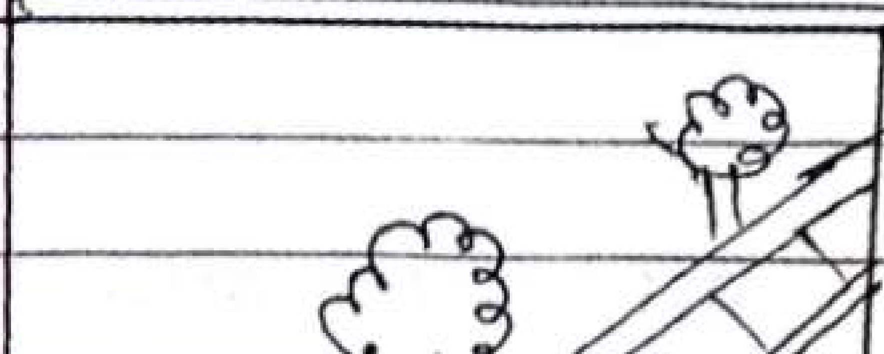

4 D

अनेक प्रकार की रेखाओं का प्रयोग करता है जिसमें सबसे नजदीक होने वाली आकृति को बड़े आकार में तथा पुष्ट रेखाओं से चित्रित करता है। मध्यम दूरी की आकृति को सामान्य रेखाओं द्वारा हल्की रेखाओं का प्रयोग करके करता है जबकि सबसे दूर वाली आकृति को सबसे छोटे आकार में तथा टूटी फूटी रेखाओं द्वारा चित्रण करके अन्तराल का विकास करता है जैसे कि चित्र संख्या 4 D में चित्रण किया गया है।

5. वातावरणीय क्षय वृद्धि - चित्रकार विभिन्न मौसम

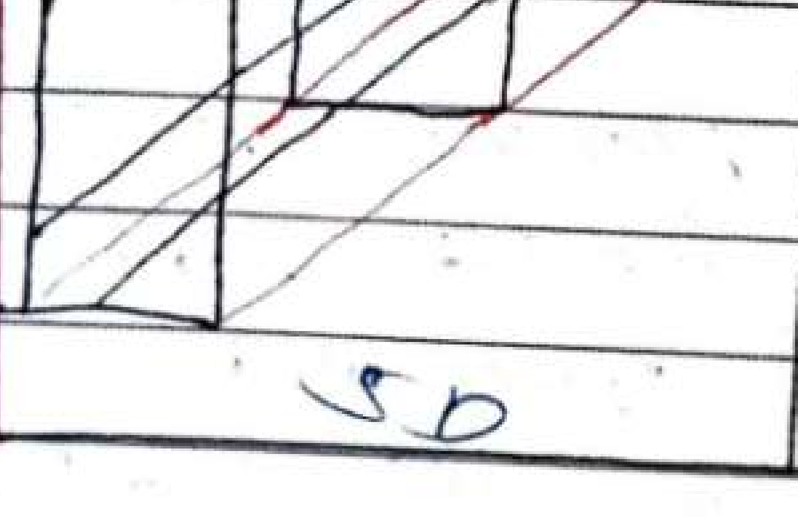

5 D

में अनेक आकृतियों का अध्ययन करता है, साथ ही परिप्रेक्ष्य का आविष्कार भी करना होता है, तो जैसे जैसे कोहरे में धुंधली दिखाई देती है वैसी ही दूर की आकृति 'अस्पष्ट' बनी जाती का चित्रण करना होता है।

मध्यम दूरी की आकृतियों में सौम्यता एवं भावव्य होता है, जबकि सबसे समीप की आकृतियों में स्पष्ट कठोर रेखाओं का प्रयोग किया जाता है जैसा कि चित्र संख्या 5D में अंकित है।

*** मूर्तिकला और अन्तराल :** मूर्तिकला वास्तव में तो त्रिआयामी माध्यम है जिसमें सक्रिय अन्तराल एवं सहायक अन्तराल का विकास होता है किन्तु इसमे गतित्व नहीं होता है।
अतः त्रिआयामी होने के पश्चात् भी गतित्व नहीं होने से श्रेष्ठतम अन्तराल का उदाहरण नहीं मान सकते।

*** वास्तुकला / स्थापत्य कला व अन्तराल —** वास्तुकला पूर्णतः त्रिआयामी कला है, जिसमे सक्रिय अन्तराल एवं सहायक अन्तराल की उपस्थिति है और गतित्व भी है अतः अन्तराल के दृष्टिकोण से श्रेष्ठतम उदाहरण है।

*** अंतराल का महत्व —** चित्रकार के पास द्विआयामी चित्रतल होता है, जिसपर कला के तत्व रेखा, रूप, रंग, तान पोत से अन्तराल का विकास करना होता है, क्योंकि यदि अंतराल विकसित न होगा तो त्रिआयामी प्रभाव नहीं आ पाएगा और

त्रिआयामी प्रभाव नहीं होगा तो सम्पूर्ण चित्र की कल्पना करना बेईमानी होगा, अतः चित्रकार उपरोक्त तत्वों को इस प्रकार से अनुपात में प्रयोग करे कि सभी तत्वों का समावेश भी हो और अन्तराल का विकास भी हो जिससे श्रेष्ठ चित्र का निर्माण हो सके।

Date - 24/9/24 Topic- Unit - IV

Page No. Date

★ सृजनात्मक प्रक्रिया ★

Q:1. सृजनात्मक प्रक्रिया क्या है ? किसी एक प्रक्रिया को विस्तार से समझाइए ।

Ans सृजन से तात्पर्य :- रचना तथा रचनाकार को सृजक कहा जाता है। आदिकाल से लेकर मानव किसी न किसी आनंद की अनुभूति को शब्दों द्वारा रंगों द्वारा नृत्य द्वारा अनेक कार्य चित्रकला मूर्तिकला एवं संगीतकला या नाट्य कला का विकास होता रहा है। प्राचीन गुफाओं में मन के भावों को उद्घाटित करते हुए गुफाओं में चित्रण किया गया है। समयान्तर आध्यात्मिक से जुड़ते हुए परम ईश्वर तत्व की प्रेरणा मानते हुए धार्मिक कृतियों से संबंधित चित्रण किया गया है। जिसके ईश्वर के मूर्त रूप की कल्पना की गई और उसी परिकल्पना को कला के तत्वों (रेखा, रंग, रूप, तान, पोत, अंतराल) को इस प्रकार नियोजित किया कि एक नई कला का सृजन हो गया अर्थात कलाकार सृजक तथा कला सृजक के नाम से जाना जाता है।

→ शब्दों द्वारा साहित्य का सृजन होता है वाद्य यंत्रों द्वारा संगीत का सृजन होता है इसी प्रकार प्राचीन काल में यूरोपियन दार्शनिक प्लेटो ने कहा है कि -

" कलाकृति प्रकृति की अनुकृति मात्र है जो दैव्य रूप में ही स्वीकृत है इसको अपने अनुसार तोड़ा - मरोड़ा नहीं जा सकता।
अर्थात प्रकृति जनित जो रूप आकार है वही चित्रकार का विषय होना चाहिए। किन्तु पुनर्जागरण काल में लियोनार्डो दा विंची ने कला को मौलिक सृजन कहा है। और उसे मानवीय रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार सृजनात्मक प्रक्रिया संवेदन की स्थिति में कलाकार के सम्पूर्ण मानसिक स्थिति की सौन्दर्य पूर्ण अभिव्यक्ति होती है।
अर्थात कलाकृति मानव मस्तिष्क की वह सृजनात्मक प्रक्रिया है जिसके द्वारा वह अपने अनुभवों को किन्हीं कला तत्वों एवं सौन्दर्य सिद्धान्तों के आधार पर अभिव्यक्ति करता है।

वैसे तो एक शिशु जब जन्म लेता है तो वह भी अपना एक नया सृजनात्मक कार्य करता है। जैसे - हाथ - पैर हिलाना, आँखों में आँखे डालकर मुस्कुराना, सामने वाले की बात सुनकर हामी भरना। जैसे कि उसे सब कुछ समझ में आ रहा हो। अतः मानव ही वह रूप है जो इस दुनिया में सृजनात्मक कार्य करता है। बाल्यावस्था से ही इंसान / बालक सृजन लगा हुआ रहता है जो वृद्धावस्था तक एक नवीन शैली का निर्माण कर देता है जिसके परिणामस्वरूप प्रभाववाद, घनवाद, फाववाद, अभिव्यंजनवाद का विकास करते हुए एक नई शैली का सृजन हुआ और इसी क्रम में भविष्य में भी होता रहेगा।

प्लेटो के अनुसार कलाकार को नैसर्गिक अध्ययन करना चाहिए जिससे उसका मानसिक विकास भी हो सके और अनुभव प्राप्त कर सके, उसके बिना सृजनात्मक भूमिका लाना असंभव है अतः किसी भी तरह के विद्यार्थी को वस्तु को देखना उसको छूकर महसूस करना उसी को नैसर्गिक अध्ययन करने से शारीरिक, मानसिक और ज्ञानेन्द्रिय का विकास होता है, उसी को कलाकार अपने आत्मिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है, जिससे सौन्दर्य भावना से बनाए गए चित्र, गाए गए गीत कवि द्वारा रचित गीत आदि की अभिव्यक्ति मे सौन्दर्य पक्ष महत्वपूर्ण रूप से देखा जा सकता है। कला का जहाँ पर आत्मिक पक्ष है, वहाँ शिक्षा भी है की मानव मन मे उसका संबंध स्थापित हो जाता है जो कि मानसिक स्थिति का परिचायक है।

⇒ सौन्दर्य शास्त्रियों ने सृजनात्मक प्रक्रिया को अध्ययन करने हेतु चार प्रक्रिया का अनुसंधान किया है जो इस प्रकार से है–

1. निरीक्षण या देखने की प्रक्रिया
2. अनुभूति या ग्रहण करने की प्रक्रिया
3. कल्पना की प्रक्रिया
4. सृजनात्मक अभिव्यक्ति की प्रक्रिया।

निरीक्षण या देखने की प्रक्रिया — निरीक्षण से करना या देखना एक प्रक्रिया है किन्तु एक चित्रकार किसी भी आकार या रूप को देखने का नजरिया होता है जिसमें सामान्य व्यक्ति की परिकल्पना अलग होती है तथा

कलाकार की

कलाकार किसी भी रूप आकार को ल०, चौ०, गहराई को ही नहीं देखता है बल्कि चित्र के उद्देश्य के अनुसार उस रूप का होना कितना आवश्यक है या किसी रूप का न होना आवश्यक है यह निर्णय सिर्फ एक कलाकार का है। जिससे कलाकार की सोच प्रकट होती है। उदा. के तौर पर किसी उत्सव के चित्र में कटे-फटे वस्त्र या उदास से चेहरों के साथ चित्र नहीं बनाया जा सकता इन्हीं अनुभवों को सम्मिलित करते हुए वातावरणीय प्रभाव से प्रभावित होता है जिसको चित्रकारों ने सम्मिलित किया जिसके परिणामस्वरूप प्रभाववाद, भाववाद, अभिव्यंजनावाद घनवाद जैसे विश्व प्रसिद्ध शैलियों का उद्भव हुआ।

अनुभूति या ग्रहण करने की प्रक्रिया — यह प्रक्रिया एक मानसिक प्रक्रिया है जिसमे सौन्दर्यानुभूति कला की आत्मा है क्योंकि कला उन सहज अनुभूतियों का संकलन करती है जो सदैव संवेदनाओं एवं प्रभावों से संबंधित है।

Page No.
Date

मनुष्य के मन में सत्यम् शिवम सुन्दरम की परिकल्पना होती है।
अतः अनुभूति एक सामाजिक क्रिया है जो सौन्दर्य चेतना और रूप भेद बोध के द्वारा हमें संतुष्टि देती है।

पाश्चात्य विद्वान क्रोचे ने अनुभूति को सहज तथा कला का जनक माना गया है, उन्होंने उसे बौद्धिक ज्ञान से भिन्न माना है।

टालस्टॉय — इन्होंने कला में अनुभूति को बहुत ही महत्वपूर्ण माना है।
पाश्चात्य रस्किन ने भी कला में सौन्दर्यानुभूति का महत्व स्वीकार किया इसी प्रकार —

हर्बर्ट रीड — कलाकार अपनी अनुभूतियों के लिए प्रतीकों की रचना करता है।

भारतीय शास्त्रियों ने कला की अवधारणा इस प्रकार प्रतिपादित की है —
भरत मुनि ने रस की अनुभूति को ही कला का मूल स्रोत माना है इस प्रकार बाह्य रूप, रंग आदि को आत्मसात करना या अनुभव करना इस प्रकार में सम्मिलित है जिनके दो आधार हैं —

वस्तु
अनुभव कर्ता

वस्तु स्वतंत्र और बाह्य होती है किन्तु अनुभवकर्ता एक संवेदनशील व्यक्ति होता है जो सौन्दर्यानुभूति ही करता है किन्तु यह मानना अनुचित है कि सौन्दर्यानुभूति ही कला में सब कुछ है इसके साथ ही कलाकार के लिए जीवन के रहस्यों का अनुभव करना आवश्यक है क्योंकि जीवन से जुड़े अनेक अमूर्त विषय भी इससे जुड़े होते हैं।

<u>कल्पना की प्रक्रिया</u> – कल्पना शक्ति कला में एक महत्वपूर्ण तत्त्व है यह वह शक्ति है जो संवेदना व बुद्धि के मध्य में स्थित होती है अतः कल्पना के लिए संवेदना का होना आवश्यक है। ज्ञान के लिए द्रष्टा और दृश्य की आवश्यकता है संवेदनशील व्यक्ति ही द्रष्टा कहलाता है और कलाकार ही एक संवेदनशील व्यक्ति होता है इस प्रकार वह शक्ति जो अनुभूति और ज्ञान के पश्चात् हमारे मस्तिष्क में प्रभाव डालती है वह कल्पना है।

:- दार्शनिक दृष्टिकोण से कल्पना वही है जिसे प्राचीन बौद्ध विचारों को दिङ्नाग, धर्मकीर्ति मानस प्रत्यक्ष की संज्ञा से संबोधित करते हैं जिसके अनुसार केवल संवेदना व विषय बिजली की तरह क्षणिक होते हैं तथा गतिशील एवं अस्पष्ट होती है और उसके द्वारा विकल्प रहित प्रतिक्षण की प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः मानव प्रत्यक्ष के द्वारा ही संभव है।

अर्थात् कल्पना बुद्धि व योजना निर्माण व संकल्प आदि के पूर्व और उससे स्वतंत्र है कल्पना से ही बुद्धि और संकल्प विशेष सामग्री मिलती है कल्पना एक प्रकार का प्रत्यक्षीकरण है। यह कोई अलौकिक दिव्य दृष्टि या अनुमान नहीं है, ना ही एक प्रकार का मनगढ़ंत खेल या खयाली पुलाव या स्वप्न है।

अतः कल्पना वह मानसिक क्रिया है जिसके द्वारा हमें किन्हीं सम्पूर्ण परिस्थितियों का प्रत्यक्ष बोध एक साथ एक आकार अथवा मूर्तिमान रूप में होता है और इसी का आधार पर कलाकार अपनी नवीन दृष्टि को रूप अथवा आकार प्रदान करता है इसलिए कल्पना कलाकार की एक रचनात्मक शक्ति मानी जाती है कला के क्षेत्र में उसी कल्पना का महत्व है जो संवेदनाओं व

संवादों से मिश्रित प्रत्यक्ष आकार ग्रहण कर कलाकृति के रूप में ढल जाती है।

सृजनात्मक अभिव्यक्ति की प्रक्रिया – आर० जी० कालिंगवुड के अनुसार कला रचना एक संपूर्ण प्रक्रिया है जिसका आनन्द लेने वाला व्यक्ति अपनी कल्पना द्वारा उसे समझता है। वह इसके प्रति सजग होता है अतः अपने लिए काल्पनिक अनुभव या क्रिया का निर्माण करके हम अपने भावों को अभिव्यक्त करते हैं और उसे हम कला कहते हैं।

एक छोटा सा बच्चा रोता है हाथ-पैर हिलाता है यह एक स्वाभाविक क्रिया है मानव को सुख लगती है। कहीं चोट में दर्द होता है अपने दुःख-सुख की कहानी एक दूसरे को कहते हैं उस अभिव्यक्ति में कहीं भी कोई दबाव नहीं होता है यह अभिव्यक्तियां स्वच्छंद या मुक्त कही जाती हैं। जब यह मुक्त अभिव्यक्तियां कहलाती हैं यह सृजनात्मक अभिव्यक्तियां कलाकार के अंतर्मन परिपक्व विचारधारा व उसकी सृजनात्मकता का परिचायक होती है। अतः कला मानव की सहज अभिव्यक्ति ही है।

यह अभिव्यक्ति सूचना दान से भिन्न होती है बल्कि ~~कुछ~~ दूसरे को कार्य समझाना नहीं है अपितु स्वयं को समझना होता है प्रत्येक स्तर पर संवेदिक स्नायु र उसकी अभिव्यक्ति भी हो जाया करती है, किन्तु ऊँचे ज्ञानात्मक स्तर पर अभिव्यक्ति का रूप बदल जाता है किसी कवि या कलाकार के मन में जब तीव्र वेदना या बेचैनी हो जाती है तो वह उस पर ध्यान देता है अर्थात् कल्पना का प्रकाश डालकर उस वेदना को समझ लेते है इसी समझने का नया नाम अभिव्यक्ति या प्रकाश है।

Page No. ______
Date

कहा जा सकता है कि
क प्रक्रिया कलाकार के
ासिक अभिव्यक्ति की एक
पना है जिसके मूल
रमानंद व मानव
निर्माण व समाज के
भावना विद्यमान होती है।

Date - 30/9/24. Topic -

Page No. ____ Date

* कला का अर्थ व परिभाषा *

Q.1 कला का अर्थ क्या है? विभिन्न विद्वानों द्वारा परिभाषित कीजिए।

Q:2. कला के वर्गीकरण को स्पष्ट कीजिए।

Q:3 ललित कला एवं उपयोगी कला में अन्तर व समानताएँ लिखिए।

Ans
⇒ कला मानव की भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति है जो कल्याणकारी होती है, कल्पना के सौन्दर्य अभिव्यक्ति का नाम ही कला है, कल्पना की अभिव्यक्ति भिन्न 2 प्रकार से भिन्न 2 माध्यमों से की जा सकती है यह अभिव्यक्ति जिस भी माध्यम से या जिस प्रकार से हो वहीं कला के अन्तर्गत महत्व रखती है

- श्रेष्ठ कलाकृति का जन्म, अन्तर्मन व चेतन मन के परस्पर सहयोग से होता है ऐसी कला कभी भी गलत नहीं होती है। क्योंकि कला हमेशा परोपकारी एवं कल्याण के लिए होती है।

* परिभाषा :- *भारतीय विद्वानों द्वारा प्रतिपादित कला की परिभाषा निम्नलिखित है.

1 रवीन्द्र नाथ टैगोर —
"जो सत्य है, जो सुन्दर है वही कला है"

2. मैथिली शरण गुप्त —
" कला अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति है।"

आशीत कुमार हल्दर —
3. " कला मानव का सात्विक गुण है, एक सरल भाषा है जो मानव जीवन के सत्यों को सौन्दर्यात्मक एवं कल्याणकारी रूप में प्रस्तुत करता है।"

डॉ॰ श्याम सुन्दर दास —
4. " जिस अभिव्यंजना के आन्तरिक भावों का प्रकाशन और कल्पना का योग रहता है, वही कला है।"

*पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार परिभाषा —
कवि शैली —
1. " कला कल्पना की अभिव्यक्ति है"

2. फ्रॉयड —
" दमित वासनाओं का उभरा हुआ रूप ही कला है।"

5. फ्रेंच समालोचक फागुए —
"कला भावों की उस अभिव्यक्ति को कहते हैं जो तीव्र गति से मानव हृदय को स्पर्श कर सके।"

6. टालस्टाय —
"कला की महत्ता का ज्ञान भावों की सफल अभिव्यक्ति है और कलाकार के मन पर पड़े हुए भावों का सफलतापूर्ण सम्प्रेषण है।"

"कला एक मानवीय चेष्टा है जिससे एक मनुष्य अपनी अनुभूतियों को स्वेच्छापूर्ण कुछ संकेतों के द्वारा दूसरों पर प्रकट करता है।"

⇒ भारत में कला को योग साधना माना है, कला हमारे विचारों का एक दृश्य भाग है, वह हमारी कल्पना शक्ति आदर्शप्रियता एवं सृजन शक्ति से युक्त है, सौन्दर्य तीव्रतम अनुभूति से आत्मविभोर होकर ही कलाकार सृजन करता है, इस प्रकार की कला ही वास्तव में भावपूर्ण व रसपूर्ण है।

अतः कल्पना की सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति का नाम भी कला ही है।

प्राचीन काल के गुफा वासियों से लेकर आज तक विभिन्न प्रकार की कलाओं का सृजन विभिन्न माध्यमों द्वारा हुआ जिसमे दिवार, कपड़ा, कागज, पत्थर की चट्टाने, ताड़पत्र अभ्रक की भित्ते, वसली इत्यादि पर परिस्थिति के अनुसार पर्याप्त रंगो के द्वारा चित्रण किया गया जो समय के अनुसार निरन्तर आगे कि ओर सृजनात्मकता कि ओर अग्रसर रहा।

व्यवहारिक दृष्टिकोण से कला के बारे में हम यही कह सकते है - कला का अर्थ उसके प्रभाव मे ही नीहित है एक सहृदय जिस कलाकृति से प्रभावित होता है, वह कलाकृति ही श्रेष्ठ है। प्राचीन दृष्टिकोण से देखे तो यह प्रभाव चमत्कार के कारण पैदा होता है। परम्परावादी विचार चमत्कार ...
... परम्परावादी ... समझते है।

लेकिन जो कि यह लैटिन भाषा ARS से बना है जिसका ग्रीक रूपान्तर TEXVEN है। इस शब्द को प्राचीन काल में शिल्प - CRAFT से जाना जाता है। जैसे स्वर्णकारी, दस्तकारी आदि।

- प्राचीन भारतीय सभ्यताओं में शिल्प कला के बारे में तथा शिल्पी कलाकार के बारे में जाना गया है।
- प्राचीन काल में शिल्प के बारे में कोई विभाजन नहीं था।
- प्राचीन ग्रीक एवं रोमन भाषा का ART शब्द शिल्प के लिए प्रयुक्त किया गया है। इसमें कला शब्द की सौन्दर्य गरिमा पृथक रूप से समाविष्ट नहीं था।
- 18 वी सदी में सौन्दर्य शास्त्रियों में शिल्प और कला को विभाजित किया जिसमें उपयोगी कला तथा ललित कला का विकास हुआ।
- 19 वी सदी आते-आते कला शब्द में छुपा हुआ सौन्दर्य बोध इतना प्रबल हुआ कि पुराने विशेषण ललित को ही हटा देने पर भी व अपने अपेक्षित अर्थ को पूर्ण रूप से ध्वनित करने लगा और सामान्य व्यवहार में ललित कला की अपेक्षा कला शब्द का ही प्रयोग किया जाने लगा।

Page No.
Date

- हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के अनुसार प्राचीन भारतीय साहित्यों के इतिहास में महामाया का चिन्मय विलास को ही कला कहा गया है, उन्होंने कला को शिव की आदी शक्तियों से संबंध माना है।

- ललिता स्तवराज से ज्ञात होता है कि जब-जब शिव को लीला की प्रयोजन की अनुभूति होती है तब-तब महाशक्ति रूपी महामाया सृष्टि की रचना करती है।
अतः शिव की लीला सखी होने के कारण महामाया को ललिता कहा गया है और यह माना जाता है कि इन्हीं ललिता के लालित्य से ही ललित कलाओं की सृष्टि हुई।

- अतः जहाँ कहीं भी सौन्दर्य प्रवृत्ति विद्यमान है वहीं महामाया की यह लीला ललित रूप में भी विद्यमान है।
अतः प्राचीन मतानुसार ललित कला आनंद की निधि है, माया के पंच-कंचुकों काल, नियति, राग, विद्या और कला में कला भी एक है।

→ इस प्रकार शैव विचारधारा में कला का दार्शनिक महत्व है जिसके अनुसार कला का लक्ष्य, आत्मा के स्वरूप का साक्षात्कार तथा परम तत्व कि ओर उन्मुख हुआ होना है।

Page No.
Date

इस प्रकार भारतीय शैव साहित्यो से संबंध कला चिंतना पूर्णतया आध्यात्मिक रही है, किन्तु कुछ समय पश्चात भारतीय परम्परा मे यह कला पवित्र मानी जाती रही है और कामशास्त्र व कोकशास्त्र से ही कला की अधिकांश चर्चा होने लगी, कला के प्रति भारतीयो का जो दृष्टिकोण रहा है उसे हम यहां के विभिन्न विस्तरित कला सूची के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सकते है।
जैसे –

ललित विस्तार	–	86
प्रबन्ध कोष	–	72
कामसूत्र (वात्स्यायन)	–	64
कालिका पुराण	–	64
कादम्बरी	–	64
काव्य शास्त्र (आचार्य दण्डीकृत)	–	64
अग्नि पुराण	–	64
बौद्ध एवं जैन धर्म मे	–	64

अर्थात उपरोक्त अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि ललित कला की श्रेणी मे प्राचीन साहित्यों मे 64 कलाओं का वर्णन किया गया है, जो श्रेष्ठतम उदाहरणो मे से एक है।

* **ललित कलाओं की प्रकृति व क्षेत्र :** प्राचीन भारतीय मान्यताओं में कला के लिए शिल्प तथा कलाकार के लिए शिल्पी शब्द का प्रयोग किया गया है।

- प्राचीन ग्रीक एवं रोमन भाषा में आर्ट शब्द केवल शिल्प के लिए प्रयोग किया गया है। 18 वी सदी में सौन्दर्य शास्त्रियों ने शिल्प व कला को विभाजित किया जिसमें उपयोगी एवं ललित कला के रूप में किया है।

- 19 वी सदी आते २ कला शब्द में छिपा हुआ सौन्दर्य बोध इतना प्रबल हो चला कि अपने पुराने विश्लेषण ललित को हटाने के लिए भी तैयार हो गये। सामान्य तौर पर कला शब्द को भी ललित कला जितना ही महत्व देने लग गये।

* **ललित कलाओं की प्रकृति :**

Page No. ____
Date

(4) ललित कलाएं मनुष्य को ऐसी स्थिति से मिलाती है जिसे परम सत्य या परमानंद की स्थिती कहा जाता है।

(5) ललित कलाएं आनन्द की निधि है एवं परलौकिक सौन्दर्य की समवाहक है। जो लोकोत्तर जीवन को संवारती है।

(6) ललित कलाएं कल्पना की के सहयोग के रूप का सृजन करती है सृजन ही इन कलाओं का सार है।

→ प्लेटो ने कहा है कि "ललित कलाएं मानव को शिक्षित व सुसंस्कृत बनाती है।"

→ सुकरात के अनुसार "ललित कलाओं को प्रमार्थ शास्त्र के रूप में देखा जाना चाहिए। यह मानवीक क्रियाओं व विचारों का पोषण करती है संवर्धन करती है इन भावों का संशोधन चिंतन की गहनता और चरित्र निर्माण होता है।"

ललित कला का क्षेत्र —

समस्त ललित कलाओं को सौन्दर्य व कल्पना के तत्व समान रूप से प्रभावित होते है।

Page No. ______
Date

ललित कलाओं में रुचि का होना आवश्यक है कला रूप का सृजन करती है और अरूप को रूप प्रदान करती है।
अतः रूप निर्माण के सभी तत्त्व सभी ललित कलाओं को समान रूप से प्रभावित करती है।

विशुद्ध कला सृजन का रूपान्तरण आज के युग की आवश्यकता है।
"कला कला के लिए" का नारा है। यह अपनी प्रासंगिकता खो चुका है अब ललित कला ने भी व्यवसायिक गुणों को अपनाना प्रारम्भ कर लिया है।

आज सर्वत्र प्रचार व प्रसार के माध्यमों के क्रम में जिसके फलस्वरूप आधुनिक जीवन में भौतिकवादी दृष्टिकोण व उपभोक्ता संस्कृति का जन्म हुआ जिनसे प्राचीन सभ्यताओं व परम्पराओं का खंडन हुआ।
अतः ललित कलाएं इन तत्वों से समान रूप से प्रभावित रही, आज विश्वविद्यालयों में ललित कला व उपयोगी कला दोनों की एक साथ शिक्षा भी दी जा रही है।

सभी प्रकार की कलाओं में भावतत्त्व (आनन्द), रूपतत्व (आकार) व प्रतिपाद्य तत्व (प्रस्तुत करना) तथा ज्ञानत्व की उपस्थिति विद्यमान रहती है।

Page No. ____
Date

(6) → ललित कलाएं व व्यवहारी कलाएं समग्र रूप से सौन्दर्य स्वाद ग्रहण करना व सृजनात्मक मूल्यों आदर्शों व विशिष्ट लाक्षणिकता आदि गुणों का विकास करते है और मानवीय जीवन को जीने योग्य बनाती है।

(8) आजकल आंतरिक सज्जा, वस्त्र सज्जा आदि कला के नवीन कार्यों का विकास कला के समृद्ध रूप को अभिव्यक्त करता है।

(9) आजकल विभिन्न व्यवसायिक संस्थानों में कलाकारों को सृजन धर्मी एवं ललित कलात्मक कलाकारों का प्रशिक्षण होता है, जिनमे भारतीय प्रमुख संस्थान निम्न है -

1. नेशनल इंस्टीट्यूट फोर डिजाइन (NID)
2. नेशनल इंस्टीट्यूट फोर फैशन डिजाइन (NIFD)
3. नेशनल इंस्टीट्यूट फोर फेशन टेक्नोलाजी (NIFT)

इसी प्रकार फिल्म एवं टी॰ वी॰ संस्थान पुणे, राष्ट्रीय नाट्य कला संस्थान नई दिल्ली से भी अनेक कलाकार अपना प्रशिक्षण प्राप्त करके फिल्मो मे अथवा टी. वी. सीरियल मे अपना भविष्य खोजते है।

(10) व्यवसायिक उत्पादनों को उपभोक्ता तक पहुंचाने का प्रयास भी अद्भुत कलापूर्ण हो गया है।

ललित कलाएं आज व्यवसायिक क्षेत्रों मे अपना प्रभाव जमा चुकी है और व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा के कारण मौलिक सर्जनात्मक कि ओर अग्रसर रहे।

(ii) ललित कला मे नवीन कलात्मक स्वरूप ग्रहण कर लिया है, जिसमे महत्व नैतिक व आदर्शों की स्थापना के प्रचार - प्रसार का उपयोग हो रहा है। आज कला कला के लिए एक भ्रम पूर्ण हो गई है, समाज मनोविज्ञान, परिचय, सहचर्य व समय के तत्व कलाकारों को नवीन दृष्टिकोण प्रदान कर रहे है।

निष्कर्ष यह है ललित कलाएं मनुष्य के मानसिक विकास बौद्धिक विकास, आत्मिक विकास, व्यक्तित्व विकास, भावनात्मक विकास, सांस्कृतिक व नैतिक विकास की दिशा मे कार्यरत रहते है। इसमें कल्पना शक्ति, स्मृति, निरक्षण शक्ति, स्वतंत्र चिंतन, तुलनात्मक प्रवृत्ति, आत्म प्रकाशन और आत्म निर्णय की क्षमता का विकास होता है।

अतः ललित कलाएं अत्यन्त महत्वमयी व मानव के लिए अत्यंत कल्याणकारी है।

(2) ललित कलाएं व उपयोगी कलाओं मे असमानताएं व समानताएं नहीं है —

असमानताएँ

ललित कला	उपयोगी कला
1. ललित कला का संबंध मनुष्य के सांस्कृतिक विकास व भावों की सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति है तथा इसका संबंध लोकोत्तर जीवन से है।	1. उपयोगी कला का संबंध सभ्यता के क्रमिक विकास व लौकिक जीवन से है।
2. ललित कलाएँ हमारे मानसिक आवश्यकताओं की सम्पूर्ति करती है।	2. उपयोगी कला हमारे दैनिक जीवन की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है।
3. ललित कलाएं मनुष्य के जीवन को आत्मिक आनन्द से भर देती है।	3. उपयोगी कलाएं मनुष्य के भौतिक जीवन के अभाव की पूर्ति करती है।
ललित कलाएं मनुष्य को ऐसी स्थिति से मिलाती है जिसमें परम सत्य या परमानंद की स्थिती कहा गया है।	उपयोगी कला का व्यवहार पूर्णतः व्यवसायिक है व केवल भौतिक जगत से ही संबंधित है।

असमानताएँ

1. ललित कलाएं आनन्द की निधि है व पारलौकिक सौन्दर्य की समवाहक है वो लोकोत्तर जीवन को संवारती है।	5. उपयोगी कलाएं मनुष्य के भौतिक जीवन को सजाती है, संवारती है व जीवित रखती है।
2. ललित कलाएं कल्पना के सहयोगी रूप मे सृजनकर्ती है।	6. उपयोगी कला का मूल उद्देश्य उत्पादक व उपभोक्ता के मध्य सेतु का काम करना है, वह व्यवसाय उत्पाद की बिक्री से संबंधित है।

Page No. ____
Date

अन्य समानताएँ –

1. दोनों ही प्रकार की कलाओं में सौन्दर्य व कल्पना के तत्व समान रूप से प्रभावित करते हैं।

2. इन दोनों ही कलाओं में रुचि का होना आवश्यक है।

3. कला रूप का सर्जन करती है और अरूप को रूप प्रदान करती है, अतः रूप निर्माण में सभी तत्वों पर समान रूप से प्रभाव पड़ता है।

4. विशुद्ध कला सृजन का स्थानान्तरण आज के युग की आवश्यकता है। कला के लिए कला का "नारा आज अपनी प्रासंगिकता खो चुका है। अतः ललित कलाओं में व्यवसायिक गुणों का प्रभाव अधिक दिखाई देता है।

5. आज सर्वत्र प्रचार – प्रसार की धूमधाम, जिसके परिणाम स्वरूप आधुनिक जीवन में भौतिकवादी दृष्टिकोण का जन्म हुआ, जिनसे प्राचीन मान्यताओं व परम्पराओं का खंडन हुआ।
अतः दोनों ही प्रकार की कलाओं में इन तत्वों को समान रूप से प्रभावित किया है।

6. दोनों ही प्रकार की कलाओं में भावतत्व रूपतत्व, प्रतिपाद्य तत्व की उपस्थिति विद्यमान है। ललित कलाओं की भांति व्यवसायिक कला भी सौन्दर्यात्मक, स्वादग्रहता, सुसज्जात्मक मूल्यों, आदर्शों तथा विशिष्ट लाक्षणिकता आदि का विकास करती है और मानवीय जीवन को जीने योग्य बनाती है।

अतः निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि दोनों ही प्रकार की कलाओं में समान मूल्यों का निर्विवाद रूप से प्रयोग किया जाता है। अतः ललित कला व उपयोगी कला में अन्तर अवश्य है किन्तु पारस्परिक विरोध नहीं है बल्कि इनमें उभयनिष्ठ का संबंध है अर्थात एक दूसरे के पूरक है।

* **कला का महत्व** – प्राचीन काल से आधुनिक युग में विज्ञान का इतना विकास होने के बावजूद मानव परम आनन्द की खोज मे केवल कला की तरफ ही देखते है, चाहे वो चित्रकला हो, मूर्तिकला हो, संगीत कला हो या स्थापत्य कला हो कला हमेशा कल्याणकारी एवं आदर्शो की स्थापना करता है। यदि कला नहीं होगी तो मानव मूल्य समाप्त हो जाएगा क्योंकि मानव एक ही प्रकार का कार्य करते २ मानसिक अवनति कि ओर अग्रसर हो जाता है जिसे कला के द्वारा ही संतुलित किया जा सकता है।
भारतीय आचार्यो ने कला के जिस उच्च स्वरुप की कल्पना की है, वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है।
जैसे –

लीयते परमानन्दे ययाऽऽत्मा ...

बाल्यावस्था से ही कला की शिक्षा दी जाती है।

अतः कला मानव जीवन मे अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है और मानव जीवन के लिए निश्चित रूप से गुणकारी है।

- डॉ॰ विमल कुमार के अनुसार "मेरा दृढ विश्वास है कि कला ही आधुनिक युग मे सांस्कृतिक सर्वोदय को ला सकती है और आधुनिक युग के बिगड़े हुए आध्यात्मिक स्वास्थ्य मे सुधार करती है क्योंकि कला मे एक नैसर्गिक मांगलिक शक्ति है।"

- प्लेटो के अनुसार "कलाऐ मानव को शिक्षित व सुसंस्कृत बनाती है।"

- सुकरात के अनुसार "कलाओ का प्रमाण शास्त्र के रूप मे देखा जाता है एवं मानवीय क्रियाओ एवं विचारो का पोषण, संवर्धन करती है, इनके भावो का संशोधन चिंतन की गम्भीरता और चरित्र निर्माण होता है, दृढ़ता और कल्पनाशीलता का विकास होता है, इस प्रकार कलाऐ मानव को परिपूर्णता प्राप्त कराती है।"

अतः ललित कलाओ का महत्व इतना वृहदाकार है कि समुचित अभिव्यक्ति की अनुपस्थिति मे भी उसकी सार्थकता कम नहीं होती है।

निष्कर्ष -

ललित कलाएं मनुष्य के मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक व्यक्तित्व भावनात्मक सांस्कृतिक व नैतिक विकास की दिशा मे कार्यरत रहती है। इसमें कल्पना शक्ति, स्मृति, निरक्षण शक्ति, स्वतंत्र चिंतन, तुलनात्मक प्रवृत्ति, आत्म प्रकाशन और आत्म निर्णय की क्षमता का विकास होता है।

अतः ललित कलाएं अत्यन्त महत्वपूर्ण व मानव के लिए अत्यन्त कल्याणकारी है।

Unit - को लिखो।

05/10/2024

Referance

Remark/total

* दृश्य व रूप प्रद कला *

रूपप्रद क्या है? ललित कलाओं का वर्गीकरण करते हुए लेख लिखिए।

रूप प्रद कला एक चाक्षुष कला है तथा इसके अन्तर्गत वे कला आएंगी जिसे हम आँखों से देख सकते हैं। जैसे- चित्रकला एवं मूर्तिकला। जबकि ललित कला में पाँच कलाएं आती हैं जिनमें क्रमशः चित्रकला, मूर्तिकला, संगीतकला, नाट्यकला एवं काव्य कला। इन कलाओं में अन्तिम तीन कलाएं श्रव्य कला की श्रेणी में आती हैं, इन तीनों कलाओं में बिना चक्षु के प्रयोग किए बिना भी रसास्वादन किया जा सकता है।

रूपप्रद का अभिप्राय यह है कि चित्रकला में रंग ~~रेखा~~ रेखा, रूप, तान, पोत, अंतराल आदि का प्रयोग करते हुए कला के छः अंग रूपभेद, प्रमाण, भाव, लावण्य योजना, सादृश्य, रंग योजना के द्वारा एक नये रूप का सृजन करना होता है, इसके पश्चात लाल रंग या नीला रंग न कहकर हम उसे पेंटिंग (चित्र) कहेंगे, जबकि मूर्तिकला में मिट्टी या पत्थर का प्रयोग किया जाता है जब मूर्ति बन जाती है तो हम उसे मिट्टी या पत्थर ना कहकर मूर्ति कहेंगे।

ठीक इसी प्रकार उपरोक्त दोनों कलाएं रूपप्रद कहलाएगी। रूपप्रद का शाब्दिक अर्थ होता है - मूल पदार्थ अपना स्वरूप शीघ्रता से बदल लेता है, वे सभी रूपप्रद कहलाएंगे।

संगीतकला में विभिन्न सुर-ताल, शब्द, लय इत्यादि को क्रमबद्ध रूप से किया हुआ संगीत कहलाता है, जबकि संगीत के साथ में किसी ऐतिहासिक कथानों का मंचन करते हैं तो नाटक कला ही जाती है, इसी प्रकार विभिन्न शब्दों के मेल से बनाया गया एक संग्रह ही काव्य कला की श्रेणी में आता है।

ललित कला का वर्गीकरण -
- i) चित्रकला
- ii) मूर्तिकला
- iii) संगीतकला
- iv) नाट्य कला
- v) काव्यकला

...र पुराणों के अनुसार ...

Page No. ____
Date

घरो मे चित्र लिखने के समान कोई कार्य मंगल दायक नही है।

कलानाम् प्रवरम् चित्रम्
धर्म कामार्थ मोक्षदम्
मांगल्यम् प्रथमम् होतद्
गहे यत्र प्रतिष्ठितम् - चित्रसूत्र से

इसके अतिरिक्त वात्स्यायन कृत कामसूत्र की टीका (translation) पंडित यशोधर ने की थी जिसके छः अंग तथा आधुनिक युग के छः तत्वो का समायोजन एक श्रेष्ठ चित्र बनाया गया है जिसके संयोजन हेतु छः सिद्धान्तो का प्रयोग करना होता है -

1. सहयोग
2. सामंजस्य
3. सन्तुलन
4. प्रभाविता
5. प्रवाह
6. प्रमाण

इस प्रकार इस कला से सभी प्रकार के व्यक्ति आनन्दित होते है, इसमे कहा गया है

चित्रम् हि सर्व शिल्पानाम् मुखम्
लोकस्य च प्रियम्।

अर्थात चित्रकला समस्त शिल्पो एवं कलाओं मे प्रधान है तथा सर्वप्रिय है।

वह भौतिक, दैविक एवं आध्यात्मिक भावनाओं तथा सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की समन्वित रूप से अभिव्यक्ति करते है

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के 'चित्रसूत्र' में चित्रकला की विशेषताएं विस्तार से वर्णित की गई है।

~~अग~~

अभिलषितार्थ चिंतामणी नामक पुस्तक में चार प्रकार के चित्रों का निर्माण किया गया है –

बिद्ध चित्र
अबिद्ध चित्र
रस चित्र
धूलि चित्र

10/24

बिद्ध चित्र – ऐसा चित्र जो दर्पण में दिखाई देने वाले बिंब के समान वस्तु का भी अनुकृत हो।

अबिद्ध चित्र – ऐसे चित्र को चित्रकार अपने मनोभावों और कल्पना के आधार पर निर्मित करना होता है।

रस चित्र – विभिन्न रसों को साकार करने, अभिव्यक्त करने वाले चित्र को रस चित्र कहते है।

4. धूलि चित्र - लोकजीवन में प्रचलित आकार मानव के जन-जीवन से जुड़े हुए चित्र व आकार होते हैं। जो हमारे त्यौहारों से जुड़े होते हैं।
जैसे - चौकपूर्णा, दिवाली, मांडने, अल्पना आदि।

→ सामान्य रूप से प्राचीन काल में तीन प्रकार के चित्र बनते हैं -
1. भित्ति चित्र
2. पट चित्र
3. फलक चित्र

किन्तु आधुनिक युग में चित्रकला के बहुत सारे आयाम व माध्यम हो चुके हैं
जैसे - लघुचित्र, अभ्रक पेंटिंग, हाथी दांत पेंटिंग, केनवास, विभिन्न प्रकार के कागज के चित्रफलक, एचिंग (Aching painting), Lithograf. ingraving painting, Colaj आदि अनेक माध्यम व तकनीक प्रचलित है।

(ii) मूर्तिकला -
मूर्तिकला प्राचीन कला ही है, जिसमें मिट्टी, पत्थर, धातु को माध्यम बनाया गया है।
दक्षिण भारत में नटराज की मूर्ति परमात्मा के विराट रूप का प्रतिबिंब है।
भारतीय परम्परा में मूर्तिकला को स्वतंत्र स्वीकार नहीं किया गया बल्कि वास्तुकला एवं चित्रकला इसके अभिन्न अंग हैं।

जैसे - अलोरा का शिव मन्दिर जिसमें विशालकाय मंदिरो में पत्थरो की मूर्ति बनाकर रंगाकंन भी किया है
मानसागर व समरागंण सूत्र में मूर्ति निर्माण का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है, जिसमें मूर्तिकला के निर्माण की समस्त विधियां दी गई है।

भारतीय मूर्तिकला के प्रमुख प्रयोजन है -
धार्मिक, स्मारक एवं अलंकरण
इस दृष्टिकोण में मूर्तिकला का संबंध वास्तुकला के घनिष्ठतम रहा है।
सारनाथ के स्तंभ शीर्ष मे भारतीय मूर्तिकला का चरम विकास दिखाई पड़ता है, आधुनिक युग मे भारतीय मूर्तिकारो मे देवी प्रसाद चौधरी, शंखो चौधरी, धनराज भगत, राम किंकर के नाम सम्मान से लिए जाते है।

(iii) संगीत कला - सम + गीत = संगीत
गीत और वाद्य (गायन + वादन) के अभिन्न अंग है
भारतीय शास्त्रो मे संगीत कला को नाद - ब्रह्मवाद के नाम से अभिहित है। संगीत का माध्यम नाद है, नाद से ही इसकी अभि होती है किन्तु केवल नाद से ही संगीत की उत्पत्ति नही हो सकती अतः गीत और वाद्य से इसका गहरा संबंध है। भौतिक उपकरणों और आधार की सूक्ष्मता के कारण काव्य तथा ... एक ही श्रेणी मे मानते है।

क्योंकि संगीतकार भी ध्वनि की सहायता से ही अपने भावो की अभिव्यक्ति करता है।

- ऋग्वेद के शांखायन ब्राह्मण के अनुसार नृत्य, गीत और वाद्य तीनो अभिन्न अंग हैं, जबकि यजुर्वेद मे वैदिक स्वरो की संज्ञा उदात्त, अनुदात्त व स्वरित के रूप मे की गई है।

- भारतीय परम्परा अनुसार संगीत रत्नाकर की गायिकी ही भारतीय संगीत की गायिकी है, इस युग मे रागो को छः पुरुष रागो छत्तीस रागिनियों और उनके पुत्रो व पुत्रवधुओ मे विभाजित किया गया है भारतीय संगीत का सहृदय रसिक पाश्चात्य संगीत का रसास्वादन नही कर सकता और पाश्चात्य रसिक भारतीय संगीत का रसास्वादन नही कर सकता, किंतु दोनो की अपना 2 विलक्षण कलात्मक सौन्दर्य है।
भारतीय संगीत अपने आप मे पूर्ण जिसका है उसका स्वरूप रसात्मक व रमणीय है।

(iv) नाट्य कला – नाटक कला को रस ब्रह्मवाद के नाम से जाना जाता है तथा नृत्य या नर्तन नाटक का अभिन्न अंग है। भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र को मुख्य कला माना है, जबकि अन्य कलाओं को गौण कला माना है।

संस्कृत में नट्, नृत्, णत् तीन धातुऐं हैं
जिसमें क्रमशः नाट्य, नृत्त और नृत्य
शब्द की उत्पत्ति है। इस प्रकार नाट्य
शब्द की उत्पत्ति नट् धातु से और नृत्त
तथा नृत्य शब्दों की उत्पत्ति नृत्
से हुई है। इस प्रकार नृत्य को
नाटक का अभिन्न अंग माना है।

"नाट्य शास्त्र में वाक्यार्थाभिनय रसाश्रये
नाट्यम्"
ही नाट्य शास्त्र की परिभाषा है अर्थात्
नाट्य में वाक्यार्थ की प्रतीति अभिनय
के माध्यम से है और रसोद्रेक भी
उसी माध्यम से होता है।

नाट्य शास्त्र में ही एक अन्य
स्थान पर भरत मुनि कहते हैं कि
लोक का सुख-दुःख समन्वित जो
स्वभाव है वही आंगिक आदि अभिनयों
से उत्प्रेरित नाट्य नाम से अभिहित

(i) आंगिक – अंग, प्रत्यंग, एवं उपांग

(ii) वाचिक – वाणी के द्वारा प्रदर्शित

(iii) आहार्य – हार, केयूर, वेशभूषा

(iv) सात्विक सात्विक भावों के माध्यम से प्रदर्शित कर..

– भरत मुनि के नाट्य शास्त्र मे नृत्य का विस्तार से वर्णन किया गया है, नाटय के अभिनय का विशेष महत्व है और नृत्य भी अभिनयात्मक है। नृत्य की पाँच क्रियाएँ मानी गई है –

(i) स्थान
(ii) चारी
(iii) करण
(iv) अंग करण
(v) रेचक

स्थान चारी तथा नृत हस्त से नृत्य की प्रारम्भिक भंगिमा होती है, यह नृत्य की तीन मुख्य भंगिमाएं है।
चारी नृत्य का प्रथम अंग है, चारी का मतलब (पद संचालन) होता है।
भरत मुनि कहते है चारी के बिना नाटक की कोई क्रिया नहीं हो सकती।
भरत मुनि की दृष्टि मे अभिनय को तीन भागो मे बांटा है – (i) नव रसों की अभिव्य..
(ii) स्थायी भावो की अभिव्य..
(iii) संचारी भावों की अभिव्य..

यद्यपि भारतीय नृत्य संगीत का ही अभिन्न अंग है, किन्तु उसका सैद्धान्तिक विकास नाट्य अभिनय से ही हुआ है, इसलिए वह अपने मूल स्वरूप में शुद्ध और स्वतंत्र है। संगीत से उसका घनिष्ठ संबंध है। क्योंकि ताल व लय के लिए नृत्य में वाद्ययंत्रों की अनिवार्यता भी है और अधिकांश नृत्य गीत की लय पर प्रस्तुत किए जाते हैं।
अतः नृत्य का आस्वादन चमत्कार प्रदान होता है जो मूलतयाः सौन्दर्य पर निर्भर करता है, जो परम सौन्दर्य कि ओर इंगित करता है।

* **काव्य कला** — समस्त ललित कलाओं में काव्य को सर्वोत्तम स्थान दिया गया है।
काव्य का वास्तविक आधार शब्द है। भारतीय शास्त्रों में इसे शब्द ब्रह्मवाद के नाम से जानते हैं।
शब्दों के सहयोग से भाषा का निर्माण होता है और भाषा की साधना ही काव्य का जन्म होता है। भारतीय परम्परा में काव्य का घटक तत्व शब्द और अर्थ है जो कि भिन्न 2 न होकर एक ही होते हैं।
भर्तृहरि के अनुसार एक ही आत्मा के भेद (शब्द व अर्थ) अपृथक्क होकर स्थित हैं।

Page No. ____
Date

काव्य शास्त्र में शब्दों को वाचक, लक्षक व्यंजक माना है तथा अर्थ को वाच्य, लक्ष्य व व्यंग माना है। वस्तुतः शब्द की एक से अधिक शक्तियां होती है जिसके माध्यम से एक ही शब्द अनेक अर्थों की व्युत्पत्ति करा सकती है। इस दृष्टिकोण से शब्द, भाव, प्रत्यय या विचार के लिए स्वीकृत प्रतीत है। इसी प्रकार अभिधा, लक्षणा और व्यंजना को त्रिविध शक्तियां माना है।

कवि कालीदास के अनुसार — शब्द और अर्थ की सम्प्रेक्ति के महत्व को इसी प्रकार स्वीकार किया है, जिस प्रकार पार्वती व परमेश्वर एक-दूसरे से सम्पृक्त हैं। इसी प्रकार इन्होंने शब्द और अर्थ की एकता स्थापित की है। अतः भारतीय परम्पराओं में काव्य के अखंड आस्वादन का ही प्रतिपादन किया गया है।

काव्य का अपना कलात्मक श्रेष्ठत्व है और उसका विवेचन, विश्लेषण, भी यथेष्ठ है।

आनन्द वर्धन के अनुसार कवि का उद्देश्य सहृदय को आह्लाद प्रदान करना होता है और वह अपने उद्देश्य की पूर्ति सौन्दर्य निर्मिति से करता है।

इस प्रयोजन शब्द के लिए कवि भाषा का सहारा लेता है और उसके माध्यम से काव्य सत्य का प्रयोजन करता है।

कविता अनिवार्यतः प्रत्यक्ष की जाती है और प्रत्यक्ष ज्ञान सब ~~श्र~~ सहायक अनुभूति है। कवि शब्दों के द्वारा काव्यात्मक तत्वों की निर्मिति करता है काव्यात्मक तत्व वे होते हैं जिन्हें वह सजाता, संतुलित, विस्तारित, प्रगाढ़ बनाना तथा सीमाबद्ध करता है।
कविता निर्मित विधा तर्कशास्त्र विधा से भिन्न है।
वस्तुतः यह कल्पना के विधान है। कवि जो कुछ लिखता है उसका उद्देश्य कलात्मक और मौलिक आभास निर्मित करना है तथा यथार्थ बिंब को विकसित करना है, जिसे वह पाठक और श्रोता को बांध सके।

Why isn't notes writing after 9-10-24

Reenupta
13/11/24

+ पाठ्यक्रम समाप्त +